RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : KANPUR HO/002/2025-27
प्रधान डाकघर कानपुर-डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/-

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

सितम्बर-2024 | वर्ष - 16 | अंक : 08 | मूल्य : 5/-

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (सहा.अभि. जलकल विभाग), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश :
सुनील कुमार, ढेलवा, गाजीपुर (उ.प्र.), मो.: 9935363730, 9170836363
योगेन्द्र कुमार (ब्यूरो चीफ चित्रकूट मण्डल)
मो.: 8299162841
हमीरपुर ब्यूरो प्रमुख -
रघुवर प्रसाद, मो.: 9793739030
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :
40/69, डी-5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख लखनऊ मण्डल :
राजकुमार, उन्नाव
मो.: 9889273743, 9392660070
हरियाणा राज्य :
डा. रमेश रंगा, ग्राम-सराय, औरंगाबाद, पो.-बहादुरगढ़,जिला-झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड. सुशील कुमार, कानपुर
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार
कार्यालय : ग्रा. व पो.-रामटौरिया, जिला-छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य : ब्यूरो प्रमुख
रमा गजभिये, मो.: 7828273934
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट-III, बदरपुर, नई दिल्ली-44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.-1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला-अलवर-301001,
मो. : 09887512360, 0144-3201516
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.-08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :
ग्रा व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला-महोबा (उ.प्र.)
मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravinbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी
उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें -
भारतीय स्टेट बैंक
पी.पी.एन. मार्केट, कानपुर
खाता सं.-33496621020
IFSC CODE-SBIN0001784

भगवान बुद्ध ने कभी किसी को मुक्त करने का आश्वासन नहीं दिया। उन्होंने कहा कि वे मार्ग-दाता हैं, मोक्ष-दाता नहीं।

1. बहुत से धर्म ''इल्हामी धर्म'' माने जाते हैं। भगवान बुद्ध का धर्म ''इल्हामी धर्म'' नहीं।

2. कोई धर्म ''इल्हामी धर्म'' इसीलिये कहलाता है कि वह भगवान का 'संदेशा' वा 'पैगाम' समझा जाता है ताकि, वे अपने रचयिता की पूजा करें कि वह उनकी आत्माओं को मुक्त करें।

3. अक्सर यह पैगाम किसी चुने हुए व्यक्ति के द्वारा प्राप्त माना जाता है, जो पैगाम-बर कहलाता है, जिसे यह पैगाम प्राप्त होता है और जो फिर उस पैगाम को लोगों तक पहुंचाता है।

4. यह पैगम्बर का काम है कि जो उसके धर्म पर ईमान लाने वाले हों, उनके लिये मोक्ष लाभ निश्चित कर दे।

5. जो धर्म पर ईमान लाते हैं, उनकी मुक्ति का मतलब है, उनकी रूहों की निजात, ताकि वे अब दोजख में न जा सकें, लेकिन उसके लिये शर्त है कि उन्हें खुदा के हुक्मों की तामील करनी होगी और यह स्वीकार करना होगा कि पैगम्बर खुदा का पैगाम-बर है

6. बुद्ध ने कभी भी अपने को 'खुदा का पैगाम-बर' होने का दावा नहीं किया। यदि कभी किसी ने ऐसा समझा तो भगवान बुद्ध ने उसका खण्डन किया।

7. इससे भी बड़ी महत्वपूर्ण बात यह है कि भगवान बुद्ध का धर्म एक आविष्कार है, एक खोज है। इसलिये ऐसे किसी धर्म से जो ''इल्हामी'' कहा जाता है, इसका भेद पूरी-पूरी तरह स्पष्ट हो जाना चाहिये।

8. भगवान बुद्ध का धर्म इन अर्थों में एक आविष्कार है या एक खोज है क्योंकि यह पृथ्वी पर जो मानवीय-जीवन है उसके गम्भीर अध्ययन का परिणाम है, और जिन स्वाभाविक-प्रवृत्तियों (instincts) को लेकर आदमी ने जन्म ग्रहण किया है उन्हें पूरी-पूरी तरह समक्ष लेने का परिणाम है, और साथ ही उन प्रवृत्तियों को भी जिन्हें आदमी के इतिहास ने जन्म दिया है और जो अब उसके विनाश का कारण बनी हुई हैं।

9. सभी पैगम्बरों ने ''मुक्ति-दाता'' होने का दावा किया है। भगवान बुद्ध ही एक ऐसे महापुरूष हुए हैं जिन्होंने इस प्रकार का कोई दावा नहीं किया। उन्होंने 'मोक्ष-दाता' को 'मार्ग-दाता' से सर्वथा पृथक रखा है-एक तो 'मोक्ष' देने वाला, दूसरा केवल उसका 'मार्ग' बता देने वाला।

10. भगवान बुद्ध केवल मार्ग-दाता थे। अपनी मुक्ति के लिये हर किसी को स्वयं अपने आप ही प्रयास करना होता है।

11. उन्होंने इस एक सुत्त में ब्राह्मण मोग्गल्लान को यह बात सर्वथा स्पष्ट कर दी थी।

12. एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती में मिगारमाता के प्रसाद पूर्वाराम में ठहरे हुए थे।

13. उस समय ब्राह्मण मोग्गल्लान गणक तथागत के पास आया और कुशलक्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया। इस प्रकार बैठकर ब्राह्मण मोग्गल्लान गणक ने तथागत से कहा -

14. ''श्रमण गौतम! जिस प्रकार किसी भी आदमी को इस प्रासाद की परिचय क्रमशः प्राप्त होता है, एक क्रम के अनुसार एक के बाद दूसरा, यहाँ तक कि आदमी ऊपर की अंतिम सीढ़ी तक जा पहुंचता है। इसी प्रकार हम ब्राह्मणों का शिक्षा-क्रम भी कमिक है, क्रमशः है : अर्थात हमारे वेदों के अध्ययन में।

15. ''श्रमण गौतम! जैसे धनुर्विद्या में, उसी प्रकार हम ब्राह्मणों में शिक्षाक्रम क्रमिक है, क्रमशः है, जैसे गणना में।

16. ''जब हम विद्यार्थी को लेते हैं तो हम उसे गणना सिखाते हैं, 'एक एक, दो दूनी (चार), तीन तिया (नौ), चार चौके (सोलह) और इसी प्रकार सौ तक। अब श्रमण गौतम! क्या आपके लिये भी यह सम्भव है कि आप ऐसे भी शिक्षण-क्रम का परिचय दे सकें जो कमिक हो, जो क्रमशः हो और जिसके अनुसार आपके अनुयायी शिक्षा ग्रहण करते हों?

17. ''ग्रहण! यह ऐसा ही है। ब्राह्मण ! एक चतुर अश्व-शिक्षक को ही लो। वह एक श्रेष्ठ बछेड़े को हाथ में लेता है। सबसे पहले वह उसके मुंह में लगाम लगाकर उसे साधता है। फिर धीरे-धीरे दूसरी बातें सिखाता है।

18. ''इसी प्रकार हे ब्राह्मण! जो शिक्षाकर्मी है, ऐसे आदमी को तथागत लेते हैं और सर्वप्रथम यही शिक्षा देते हैं कि शीलवान रहो..... प्रातिमोक्ष के नियमों का पालन करो।

19. ''सदाचरण में दृढ़ हो जाओ, छोटे-छोटे दोषों को भी बड़ा समझो, शिक्षा ग्रहण करो और विनय में पक्के हो जाओ।

20. ''जब वह इस प्रथम शिक्षा में दृढ़ हो जाता है तो तथागत उसे अगला पाठ देते हैं, श्रमण! आओ आँख से किसी रूप को देखकर उसके सामान्य स्वरूप या उसके ब्योरे से आकर्षित न होओ।

21. ''उस प्रवृत्ति पर काबू रखो, जो तृष्णा का परिणाम है, जो असंयत होकर चक्षु-इन्द्रिय से रूप देखने से उत्पन्न होती है... ये कु-प्रवृत्तियाँ, ये चित्त की अकुशल अवस्थायें

आदमी पर बाढ़ की तरह काबू पा लेती हैं। चक्षु–इन्द्रिय को संयत रखो। चक्षु–इन्द्रिय को काबू में रखो।

22. ''और इसी प्रकार दूसरी इन्द्रियों के विषय में भी सावधान रहो। जब तुम कान से कोई शब्द सुनो, या नाक से कोई गन्ध सूंघो, या जिह्वा से कोई चीज चखो, या शरीर से किसी को स्पर्श करो, और जब तुम्हारे मन में तत्सम्बन्धी संज्ञा पैदा हो तो उस वस्तु के सामान्य स्वरूप अथवा उसके ब्योरे से आकर्षित मत हो।

23. ''ज्यों ही वह उसका पूर्ण अभ्यास कर लेता है, तो तथागत उसे अगला पाठ देते हैं : श्रमण! आओ! भोजन के विषय में मात्रा हो, न खेल के लिये, न मद के लिये, न शरीर को सजाने के लिए, बल्कि जब तक इस शरीर की स्थिति है तब तक इसे स्थिर बनाये रखने, विहिंसा से बचे रहने के लिये तथा श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने के लिये ही भोजन ग्रहण करो। भोजन ग्रहण करते समय मन में यह विचार रहना चाहिए कि मैं पहले की वेदना का नाश कर रहा हूँ, नई वेदना नहीं उत्पन्न होने दे रहा हूँ .... मेरी जीवन–यात्रा निर्दोष होगी और सुख–पूर्ण होगी।

24. ''ब्राह्मण! जब वह भोजन के विषय में संयत हो जाता है, तब तथागत उसे अगला पाठ पढ़ाते हैं : श्रमण! आओ! जागरूकता (= सति) का अभ्यास करो। दिन के समय, चलते हुए व बैठे बैठे अपने चित्त को चित्त–मलों से परिशुद्ध करो। रात के पहले पहर में भी चलते–फिरते रहकर व एक जगह बैठकर ऐसा ही करो। रात के दूसरे पहर में सिंह–शैय्या से दाहिनी करवट लेट जाकर एक पैर को दूसरे पाँव पर रखे हुए, जागरूकता तथा सम्यक् जानकारी से युक्त, अप्रमादरत। तब रात के तीसरे पहर में जागकर चलते हुए वा बैठे बैठे अपने चित्त को चित्तमलों से परिशुद्ध करो।

25. ''और ब्राह्मण! जब वह जागरूकता का अभ्यासी हो जाता है, तो तथागत उसे अगला पाठ देते है : श्रमण! आओ जागरूकता और स्मृति (= सम्यक् जानकारी) से युक्त हो। आगे चलते हुए या पीछे हटते हुए अपने आपको संयत रखो। आगे देखते हुए, पीछे देखते हुए, झुकते हुए, शिथिल होते हुए, चीवर धारण करते हुए, पात्र–चीवर ले जाते हुए, खाते हुए, चबाते हुए, चखते हुए, शौच जाते हुए, चलते हुए, खड़े होते हुए, बैठते हुए, लेटते हुए, सोते हुए, जागते हुए, बोलते हुए या मौन रहते हुए, स्मृति सम्यक् जानकारी से युक्त हो।

26. ''ब्राह्मण! जब वह आत्म–संयमी हो जाता है तब तथागत उसे अगली शिक्षा देते हैं : श्रमण! आओ किसी एकान्त स्थान को खोजो–चाहे बन हो, चाहे किसी वृक्ष की छाया हो, चाहे कोई पर्वत हो, चाहे किसी पर्वत की गुफा हो, चाहे श्मशान भूमि हो, चाहे वन–गुल्म हो, चाहे खुला आकाश हो या चाहे कोई पुवाल का ढेर हो। और वह वैसा करता है। तब वह भोजनान्तर, पालथी लगाकर बैठता है और शरीर को सीधा रख चारों–ध्यानों का अभ्यास करता है।

27. ''ब्राह्मण! जो अभी शैक्ष हैं, जो अभी अशैक्ष नहीं हुए हैं, जो अभी अशैक्ष होने के लिये प्रयत्न–शील हैं, उनके लिये मेरा यही शिक्षाक्रम है।

28. ''लेकिन जो अर्हत्–पद प्राप्त है, जो अपने आस्त्रवों का क्षय कर चुके हैं, जो अपने जीवन का उद्देश्य पूरा कर चुके हैं, जो कृत्कृत्य हैं, जो अपने सिर का भार उतार चुके हैं, जो मुक्ति–प्राप्त है, जिन्होंने भव–बन्धनों का मूलोच्छेद कर दिया है और जो प्रज्ञा–विमुक्त है, ऐसो के लिये उपरोक्त श्रेष्ठ जीवन सुख–विहार भर के लिये है और जागरूकता युक्त जीवन आत्म–संयम मात्र के लिये।

29. जब यह कहा जा चुका, तब ब्राह्मण मोग्गल्लान गणक ने तथागत से कहा –

30. ''श्रमण गौतम! मुझे यह तो बताये कि क्या आप के सभी शिष्य निर्वाण प्राप्त करतें, अथवा कुछ नहीं भी कर पाते?''

31. ''ब्राह्मण! इस क्रम से शिक्षित मेरे कुछ श्रावक निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं, कुछ भी नहीं कर पाते हैं।''

32. ''श्रमण गौतम! इसका क्या कारण है? श्रमण गौतम! इसका क्या हेतु है? यहाँ निर्वाण है। यहाँ निर्वाण का मार्ग है। और यहाँ श्रमण–गौतम जैसा योग्य पथ–प्रदर्शक है। तो फिर क्या कारण है कि इस क्रम से शिक्षा–प्राप्त कुछ श्रावक निर्वाण प्राप्त करते हैं, कुछ नहीं करते?''

33. ''ब्राह्मण! मैं तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर दूंगा। लेकिन पहले तुम, जैसा तुम्हें लगे, वैसे मेरे इस प्रश्न का उत्तर दो। ब्राह्मण! अब यह बताओ कि क्या तुम राजगृह आने–जाने का मार्ग अच्छी तरह जानते हो?

34. ''श्रमण गौतम! मैं निश्चय से राजगृह आने जाने का मार्ग अच्छी तरह जानता हूँ।''

35. (अब कोई एक आदमी आता है और राजगृह जाने का मार्ग पूछता है।) लेकिन उसे जो रास्ता बताया जाता है, उसे छोड़कर वह दूसरा रास्ता पकड़ लेता है, वह गलत–मार्ग पर चल देता है, पूर्व की बजाय पश्चिम की ओर चल देता है।

36. ''तब एक दूसरा आदमी आता है और वह भी रास्ता पूछता है और तुम उसे भी ठीक–ठीक वैसे ही रास्ता बता देते हो। वह तुम्हारे बताये रास्ते पर चलता है और सकुशल राजगृह पहुँच जाता है?''

37. ब्राह्मण बोला– ''तो मैं क्या करूं, मेरा काम रास्त बता देना है।''

38. भगवान बुद्ध बोले – ''तो ब्राह्मण! मैं भी क्या करूं, तथागत का काम भी केवल रास्ता बता देना है।

39. यहाँ यह सम्पूर्ण और सुस्पष्ट कथन है कि तथागत किसी को मुक्ति नहीं देते, वे केवल मुक्ति–पथ के प्रदर्शक हैं।

40. और फिर मुक्ति या निजात कहते किसे हैं?

41. हजरत मुहम्मद तथा ईसा मसीह के लिये मुक्ति या निजात का मतलब है पैगम्बर की मध्यस्थता के कारण रूह का दोजख जाने से बच जाना।

42. बुद्ध के लिये 'मुक्ति' का मतलब है 'निर्वाण' और 'निर्वाण' का मतलब है राग–द्वेष की आग का बुझ जाना।

43. ऐसे धर्म में 'मुक्ति' का आश्वासन या वचन बद्धता हो ही कैसे सकती है?

साभार :
भगवान बुद्ध और उनका धर्म
पेज संख्या 169 से 173 तक
डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

गांधी विरोधी, हिंदू विरोधी, ईश्वर विरोधी

वी. एस. नायपॉल

तमिलनाडु में 1990 के विधानसभा चुनावों में केवल 33 या 34 प्रतिशत मतदाताओं ने विजयी द्रमुक पार्टी के पक्ष में मतदान किया था। चुनाव परिणाम आने के एक–दो दिन के अंदर ही मद्रास शहर में कुछ जगहों पर बड़े–बड़े पेंट किए हुए साइनबोर्ड दिखाई पड़ने लगे, जिन पर पार्टी के तीन नायकों के बहुत बड़े चित्र बने थे। नायकों के नाम नहीं दिए गए थे और ना ही उनके बारे में कुछ लिखा था, यह आपको ही पता करना था कि ये नायक कौन थे। ये टेढ़ी–मेढ़ी रेखाओं में बने पार्श्वचित्र थे और प्रत्येक पार्श्वचित्र किसी सिक्के पर बने राजा के सिर जैसा था, और प्रत्येक नायक को एक अलग रंग में चित्रित किया गया था। पार्टी के वर्तमान नेता एम. करूणानिधि को कत्थई से रंग में चित्रित किया गया था, 'अन्ना' के आदरसूचक नाम से ख्यात व्यक्ति सी. अन्नादुरै जिन्होंने 1967 में पहली बार इस पार्टी को चुनावी जीत दिलाई थी, उनका चित्र स्लेटी नीले अथवा इस्पाती रंग में था, और इन दो पार्श्वचित्रों के पीछे लंबी दाढ़ी और गुलाबी गालों वाले बूढ़े सज्जन का पार्श्वचित्र था जो पार्टी के भविष्यदृष्टा रहे थे।

यह भविष्यदृष्टा 'पेरियार' के नाम से ख्यात थे। यह एक तमिल शब्द है जिसा अर्थ होता है साधु अथवा महापुरूष। मैं पेरियार नाम से परिचित तो था लेकिन इतना अधिक नहीं, वास्तव में मुझे इस व्यक्ति के बारे में कछ भी पता नहीं था। अब मैं जानने लगा और जो कुछ मुझे जानने को मिला उससे तो मैं विस्मित हुआ ही, मैं इस तथ्य को जानकर भी उतना ही दंग हुआ कि मैंने भारत के स्वाधीनता आंदोलन के बारे में इतना अधिक पढ़ा था किंतु दक्षिण के इस भविष्यदृष्टा के बारे में मुझे बहुत कम पढ़ने–समझने को मिला।

वह एक अनीश्वरवादी और बुद्धिवादी थे और अपने लंबे जीवन में उन्होंने प्रतिदिन दो या तीन भाषण दिए थे। वह हिंदू देवताओं की हंसी उड़ाते थे वह सवर्ण हिंदुओं का निर्ममता से उपहास करते थे और उनकी वैज्ञानिक उपलब्धियों की विपन्नता की तुलना यूरोप की उपलब्धियों से करते थे कि हिंदुओं ने अपने देवताओं ('कुछ चुनिंदा पशु, कुछ पक्षी, कुछ वृक्ष और लताएं, कुछ पर्वत और कुछ नदियां') की नकल प्राचीन मिश्र और यूनान और फारस और कैलडिया के देवताओं से की है।

पहला आश्चर्य यह रहा कि जो व्यक्ति–कम से कम अपने अक्सर अव्यवस्थित तमिल उपदेशों के अंग्रेजी अनुवाद में हास्य–व्यंग्यकार लगता है, उसे तमिलनाडु के लोगो ने एक भविष्यदृष्टा (मसीहा) माना और उसकी मृत्यु के इतने अरसे बाद राजनीतिक जीत के एक क्षण में उसे नए सिरे से सम्मानित किया। किंतु पेरियार जब हिंदुत्व और सवर्ण हिंदुओं के खिलाफ बोलते थे, तो उनका अभिप्राय हास्य नहीं होता था। वह कभी आस्तिक रहे थे और यह धर्म और उसके प्रवर्तको के प्रति उतने ही पूर्वाग्रही थे जितना वह व्यक्ति हो सकता है जो पहले कभी आस्तिक रहा है।

मद्रास में पेरियार तिडाल नाम की एक जगह थी। वह किसी पूर्ववर्ती बस या ट्राम डिपो के स्थल पर थी। पेरियार ने इसे तब स्वयं 1953 मे एक लाख रूपये में खरीदा था, जबकि उसकी कीमत 7500 रू. थी। यह वह जगह थी जहां से उनके संगठन की गतिविधियां अभी तक संचालित हो रहीं थी।

विशाल रेतीले भूखंड के बीच में पेरियार की एक काली प्रतिमा थी जिसके गले मे हार पड़ा था। उसके

आधार स्तंभ पर लिखा था : पेरियार नए युग के भविष्यदृष्टा दक्षिण पूर्व एशिया के सुकरात समाज सुधार के जनक और अज्ञान, अंधविश्वासों, निरर्थक प्रथाओं और निराधार आचरण के कट्टर शत्रु। भूखंड के एक कोने में पेरियार की कब्र थी। कब्र के चारों ओर, चमकाए हुए भूरे मकराना पत्थर के फलक थे जिन पर पेरियार के कुछ वचन उत्कीर्ण थे। उनमें से एक प्रसिद्ध कथन बिलकुल मंत्र जैसा था : ईश्वर नहीं हैं। ईश्वर नहीं है। ईश्वर बिल्कुल नहीं है। जिसने ईश्वर का आविष्कार किया वह मूर्ख है। जो ईश्वर का प्रचार करता है वह धूर्त है। जो ईश्वर को पूजता है वह जंगली है। पेरियार अपने सभी उपदेशों की शुरूआत इन्हीं शब्दो से करते थे।

यह अकल्पनीय था कि भारत के किसी भी हिस्से में ऐसी बेलौस और कटु बात स्वीकार की जा रही थी, जबकि इसके साथ और कुछ नहीं दिया जा रहा था और पेरियार अपने 'तर्कबुद्धिवाद' और ईश्वर के अस्वीकार के साथ जो कुछ दे रहे थे वह था ब्राह्मणों और उनकी भाषा का अस्वीकार, उत्तर (भारत) का अस्वीकार, जाति का अस्वीकार, उत्तर के गोरे लोगों के हाथों दक्षिण के काले लोगों के असम्मान का अस्वीकार।

पेरियार तिडाल में उस कब्र के होने का भी महत्व था। हिंदुओं का दाह संस्कार होता है, पेरियार का आग्रह था कि उन्हें गाड़ा जाए। वह मात्र बुद्धिवादी नहीं थेः जो लोग उनकी बात सुनते थे और उनके कहे हो पसंद करते थे, इनके लिए वह हिंदू विरोधी थे।

उनका जन्म गांधी के जन्म के 10 वर्ष बाद और नेहरू के जन्म के 10 वर्ष पहले, 1879 में हुआ था। उनका राजनीतिक जीवन 1919 में शुरू हुआ और 1973 में उनकी मृत्यु के समय तक चलता रहा और यह पेरियार का दूसरा बड़ा आश्चर्य था : कि वह इतने लंबे समय तक जीवित रहे, कि उनका कार्य जीवन (कैरियर) कई वर्षो तक गांधी के कार्यजीवन के समानांतर चला और गांधी के बाद के वर्षों के संघर्ष और संधान के दौरान उनके पीछे इस हिंदू विरोधी की छवि रही जो अंततः गांधी विरोधी बना, जिसके जीवन और कार्य जीवन में गांधी के ही जीवन और कार्यजीवन का अनुगूंज और मुखालफत रहीं।

गांधी शाकाहारी थे। पेरियार गोमांस खाने को आवश्यक मानते थे। गांधी ने इंद्रियों पर संयम के लिए संघर्ष किया। पेरियार बहुत भरपूर खाते थे और बहुत स्थूलकाय थे। पेरियार के एक प्रशंसक ने मुझे बताया था, 'वह खाऊ थे' और मूल्यों के इस उलटाव में यह शब्द प्रशंसा के भाव में इस्तेमाल किया गया था। 'हमेशा बिरयानी खाते थे – चावल और बकरे गाय/भैंस, सुअर का मांस। वह खाने को लेकर कभी नखरे नहीं करते थे। गांधी खाने के मामले में हमेशा नखरा करते थे।

वह गांधी से भिन्न थे, गांधी के विरोधी थे और फिर भी कुछ मायनों में – अपने मकसद की खोज में, इसे पूरा करने के लिए तरीके ढूढ़ने में, जीवन भर इससे चिपके रहने में और सबसे बड़ी बात यह कि अपने व्यावहारिक व्यापार बोध में – वह गांधी की तरह थे। गांधी की तरह, पेरियार का जन्म भी एक हिंदू व्यापारी जाति में हुआ था। गांधी एक छोटे स्तर के प्रशासकों के परिवार से थे। पेरियार संपन्न व्यापारियों के परिवार से थे। पेरियार गांधी की तरह सुशिक्षित नहीं थे और यह कहा जा सकता है कि वह अधिक समर्पित और पारंपरिक थे। गांधी ने अपनी जाति के सिद्धांतों के विरूद्ध जाकर कानून के अध्ययन के लिए लंदन की यात्रा की। पेरियार लगभग पच्चीस वर्ष की अवस्था में (जब गांधी दक्षिण अफ्रीका में थे और कठोर संघर्ष कर रहे थे) बनारस गए और वहां आध्यात्मिक बोधि पाने की आशा में उन्होंने सन्यासियों का जीवन जिया, नंगे रहे और भक्तों से मिली भिक्षा पर निर्वाह किया।

उन्हें बोधि नहीं प्राप्त हुई और उन्होंने बनाकर छोड़ दिया और अपने गृहनगर में अपने पारिवारिक व्यापार में वापस आ गए। वह स्थानीय राजनीति में भी आ गए और फिर 1919 में, जब गांधी को भारत लौटे कुछ वर्ष हो चुके थे, पेरियार इंडियन नेशनल कांग्रेस में शामिल हो गए। उन्होंने कांग्रेस के चरखा अभियान का समर्थन किया और असहयोग आंदोलन में हिस्सा लिया।

फिर संबंध विच्छेद की बारी आई। यह दक्षिण के ब्राह्मणों के जातिगत पूर्वग्रहों के कारण हुआ। गैर–ब्राह्मणों को मंदिरों में प्रवेश की अनुमति नहीं थी। वे मंदिर के गर्भ गृह में तो बिलकुल भी नहीं जा सकते थे जहां देव प्रतिमा होती है, उन्हें दूर से दर्शन करके ही संतुष्ट होना पड़ता था। कभी–कभी गैर–ब्राह्मणों को मंदिर के सामने की गली में चलने भी नहीं दिया जाता था।

इस अंतिम प्रतिबंध को लेकर 1924 में पड़ोसी राज्य केरल में विशेष हंगामा हुआ। उस समय केरल एक रजवाड़ा हुआ करता था जिसका अपना महाराजा था और केरल के ब्राह्मण जातिगत प्रतिबंधों के मामले में मद्रास के तमिल ब्राह्मणों से भी अधिक कठोर थे। शाही महल के परिसर में एक मंदिर था और वहां एक कचहरी भी थी। एक दिन, जब मंदिर से संबंधित कोई धार्मिक मेला चल रहा था, तो मंदिर की गली गैर–ब्राह्मणां के लिए बंद कर दी गई। मंदिर वाली गली से ही कचहरी का भी रास्ता था। माधवन नाम के एक गैर–ब्राह्मण वकील को उस दिन एक मुकदमे के सिलसिले मे कचहरी में पेश होना था, किंतु (प्रसिद्धि लोगों को असंभाव्य तरीको से मिलती है) माधवन को मंदिर के पास से नहीं जाने दिया गया। केरल में कुछ गैर–ब्राह्मणो ने इसका विरोध किया और एक आंदोलन छेड़ दिया, महाराजा ने उन्हें जेल भेज दिया। उन लोगों ने पेरियार से गुहार की। पेरियार केरल आए और उन्होंने वहां पूरे एक साल तक अभियान चलाया और फिर मंदिर वाली सड़क गैर–ब्राह्मणों के लिए खोल दी गई।

इसके शीघ्र बाद एक और संकट खड़ा हो गया। यह पता चला कि गांधीवादी चिंतन का प्रचार करने वाले एक कांग्रेसी स्कूल में ब्राह्मण बच्चों को गैर–ब्राह्मण बच्चों से अलग खाना खिलाया जाता था और फिर यह पता चला कि इस स्कूल को चला तो एक ब्राह्मण रहा था, किंतु इसका पैसा गैर–ब्राह्मण देते थे। यह मामला गांधी के पास पहुंचा, किंतु उनका जवाब गोलमोल और अगंभीर था।

पेरियार ने उसी क्षण गांधी और कांग्रेस से नाता तोड़ लिया। 1925 में पेरियार ने स्वाभिमान आंदोलन की शुरूआत की और तब उनके दिमाग में यह अनूठा विचार आया कि वह अपने मकसद के प्रतीक रूप में काली कमीज पहनेंगे। उन्होंने काली कमीज में ही अपने जीवन के शेष लगभग 50 वर्षों तक ब्राह्मणवाद, जाति, कांग्रेस, हिंदू धर्म और स्त्रियों पर थोपी अयोग्यताओ के खिलाफ अभियान चलाया। उन्होंने गैर–ब्राह्मणों के लिए 'स्वयं मर्यादा' विवाह का विचार प्रस्तुत किया, जिसमें पुरोहितों अथवा धार्मिक वचनों के लिए कोई स्थान नहीं था और उन्होंने एक अपरिपक्व किस्म के समाजवाद का प्रचार किया।

''भविष्य की दुनिया में कोई भी व्यक्ति चरित्र और संस्कृति से विहीन नहीं होगा .... आधुनिक चरित्र की भ्रष्टता का आधार मनुष्यों में जाति और वर्ग की भिन्नताओं को बनाए रखने के लिए इस्तेमाल की जा रही संस्कृति, न्याय और अनुशासन है जब ये पूंजीवादी और व्यक्तिवादी स्थितियां नहीं होंगी, तो भ्रष्ट चरित्र की आवश्यकता नहीं रहेगी।

उन्होंने भविष्य का ऐसा स्वप्न प्रस्तुत किया था जो विज्ञान के परिणामों से उज्जवल होगा और जिसमें ईश्वर के आलंबन की आवश्यकता भी नहीं होगी।

संचार अधिकतर वायु मार्ग से ओर बहुत तीव्र गति से होंगे रेडियों को आदमियों के टोप में लगाया जा सकेगा विटामिन से संपन्न भोजन को गोलियों अथवा कैप्सूलों में बंद करके दिया जाएगा और यह एक दिन अथवा एक सप्ताह के लिए पर्याप्त होगा औसत आयु 100 वर्ष या अधिक हो सकती है, मोटरकारें लगभग एक हंडरवेट वजन की हो सकेंगी और बिना पेट्रोल के चलेंगी ... बिजली हर कहीं और हर घर में होगी और लोगों के सारे काम करेगी ... कोई भी उद्योग अथवा कारखाना व्यक्तियों के निजी मुनाफे के लिए नहीं चलेगा। ये सभी समुदाय के स्वामित्व में होंगे ओर सभी अविष्कार सभी लोगों की आवश्यकताओं और सुखों को पूरा करेंगे ... जब दुनिया ही स्वर्ग बन जाएगी, तो फिर बादलों में किसी स्वर्ग को चित्रित करने की आवश्यकता नहीं होगी। जहां कोई अभाव नहीं होता, वहां कोई ईश्वर नहीं होता। जहां वैज्ञानिक ज्ञान होता है, वहां अटकलों और कल्पना की कोई आवश्यकता नहीं होती... अस्तित्व के संघर्ष को सुखी जीवन में बदलने की जरूरत है।

दिन प्रति दिन दोहराए जाने वाले इस उपदेश के साथ ईश्वर के प्रत्यय और जाति की पीड़ा उड़न–छू हो जाने के इस स्वप्न के साथ वस्तुओं के व्यावहारिक पक्ष के प्रति उन्हें विरासत में मिली भावना भी चली। उनका जन्म एक व्यापारी परिवार में हुआ था, जीवन भर धन से उनका सरोकार रहा, उन्होंने धन की महत्ता से कभी इनकार नहीं किया और उनका हमेशा यही प्रयास रहा कि वह और उनका आंदोलन दबाव से मुक्त और स्वाधीन रहे। उनके आंदोलन को धन की कमी कभी नहीं हुई, उन्होंने अपने पीछे अपने मिशन की देख–भाल के लिए जो न्यास छोड़ा उसके पास काफी पैसा था।

कहीं अधिक प्रतीकात्मक उपहार कांच के एक बक्स में थे, मूर्ति भंजन के रजत उपकरण चांदी के दो मुग्दर और चांदी की दो घड़ियां, जिनका आकार उस छड़ी जैसा था जिसका इस्तेमाल पेरियार अपनी वृद्धावस्था में करते थे।

पेरियार के बाद आंदोलन का नेतृत्व माननीय के. वीरमणि के हाथों में आया था। वह पेरियार की स्मृतियों के पालक और उनके अवशेषों के रक्षक थे। मुझे मुग्दर और छड़ियाँ दिखाते हुए उन्होंने हंसकर वह कथन याद दिलाया जो उनके अनुसार संस्कृत की कहावत थी, 'नाग का विष केवल उसकी जीभ में होता है। ब्राह्मण का विष सिर से पांव तक होता है।' इस कहावत से एक और कहावत निकल आई, जो माननीय के. वीरमणि के अनुसार एक सुपरिचित हिंदी कहावत थी – 'यदि आपको ब्राह्मण और सांप दिखाई दें, तो पहले ब्राह्मण को मार लो।' (मैंने इस कहावत को वर्षो पहले एक अलग रूप में सुना था और तब मुझसे कहा गया था कि दक्षिण–पूर्व एशिया के लोंगों की घर–घर में प्रचलित कहावत है – 'यदि आप जंगल में हैं और आपको एक सांप और एक हिंदुस्तानी दिखाई देते हैं, तो पहले हिंदुस्तानी को मारो)

इस बड़े संग्रहालय कक्ष के ठीक चारों ओर, दीवारों के ऊपरी हिस्से में, छत से ठीक नीचे, 33 तैल चित्र थे जिनमें पेरियार के लंबे जीवन के पड़ावों को चित्रित किया जाता था। यह बाइबिल की तस्वीरों की तरह था : आपको कहानी का ज्ञान होना चाहिए और आपको ज्ञान हो गया तो सब कुछ सामने था : बनारस में 1904 में एक नंगे सन्यासी के रूप में पेरियार, जो भी मिला वही भोजन खाते हुए, दस वर्ष बाद अपने गृह नगर में स्थानीय राजनीति में पेरियार, 1919 में कांग्रेस के साथ पेरियार, गैर–ब्राह्मणों के

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

मंदिर प्रवेश के अधिकारों के लिए 1924 में केरल में अभियान चलाते पेरियार, कुछ ही समय बाद कांग्रेसी स्कूल में जातिगत भेदभाव समाप्त करने के लिए अभियान चलाते पेरियार, 1925 में अपने स्वाभिमान आंदोलन की शुरूआत करते और पहली बार अपनी काली कमीज पहने पेरियार, 1932 में, जर्मनी में 'जर्मन नास्तिकों' के साथ पेरियार, उसी वर्ष रूस में रूसी आरोग्यशाला के कर्मचारियों के साथ पेरियार, 1943 में पेरियार स्वाधीनता के बाद भारत के विभाजन के बारे में माननीय जिन्ना और डॉ. आंबेडकर के साथ विचार–विमर्श करते हुए (जो क्रमशः एक मुस्लिम पाकिस्तान के लिए अभियान चला रहे और दलिस्तान नाम से अनुसूचित जाति का राज्य चाह रहे थे), जबकि स्वयं पेरियार द्रविडिस्तान नाम के एक दक्षिणी, द्रविड़ और गैर–ब्राह्मण राज्य की आशा कर रहे थे। बाद के चित्रों में पेरियार को स्वाधीनता के बाद दिखाया गया था 1952 में, दक्षिण में रेलवे स्टेशनों के हिंदी नामों को मिटाते हए, 1953 में गणेश, गणपति, गज देवता की मूर्तियो तो तोड़ते हुए, यह दिखाने के लिए कि वह मिट्टी की बनी थीं और कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकती थीं, 1957 में, ब्राह्मण होटल के साइनबोर्ड में ब्राह्मण शब्द को मिटाते हुए, क्योंकि 'ब्राह्मण' का अर्थ था शाकाहारी जो सेना के विपरीत था और उसी वर्ष भारतीय संविधान को जलाते हुए।

पेरियार अपने लंबे जीवन में अंत तक एकाग्र चित्त और अनथक रहे। कमरे के बीच में, माननीय वीरमणि ने कांच के एक और संदूक में उनकी व्यक्तिगत वस्तुओं को सजाकर रखा था : उनकी टॉर्च, उनका अनुवीक्षी शीशा, उनकी असाधारण रूप से मोटी छड़ी, उनकी घड़ी, उनका चश्मा, उनकी स्टेनलेस स्टील की खाने की ट्रे, उनका शौच पात्र और सूई लगाने की सिरिंज और चिकित्सा से संबंधित अन्य वस्तुएं। लगभग गांधी के अवशेषों जैसे ही, बस यदि पेरियार अपने पीछे और कुछ भी नहीं छोड़ जाते, तो ये गांधीवत ही होते। पेरियार तिडाल के विशाल शहरी स्थल समेत, पेरियार ने अपने न्यास में जो संपत्ति छोड़ी थी वह कई लाख की थी और उनकी मृत्यु के बाद के 15 वर्षों में यह कीमत कई गुना बढ़ गई।

उनके भोजन प्रेम और मांसाहार के बावजूद, उनकी एकाग्रचित्तता और ध्यान में पवित्रता, शुद्धता जैसी कोई चीज थी और उनका यही गुण उन्हें गांधी विरोधी बनाता था। किंतु गांधी विरोधी की यह छवि केवल इसीलिए अर्थपूर्ण थी क्योंकि असली गांधी विद्यमान था। गांधी ने विकास किया और वह बूढ़े शताब्दी के पहले 40 वर्षों तक, अपने तीसवें वर्ष से सत्तरवें वर्ष तक, वह लगातार नई राजनीतिक और धार्मिक राहों की तलाश करते रहे। उनक तलाश ने उन्हें एक सार्वभौमिक व्यक्तित्व बना दिया, जिन लोगों के लिए राजनीति बहुत दूर थी, वे अपनी तलाश को उनकी तलाश से जोड़ सके। पेरियार एक स्थानीय व्यक्तित्व थे, उनका कद उनके मकसद से कभी बड़ा नहीं हुआ। गांधी और कांग्रेस और स्वाधीनता आंदोलन के बिना उनके मकसद में वह शक्ति नहीं होती जो उसमें थी, वह किसी बहुत बड़ी चीज की पीठ पर सवार थे। शायद इसीलिए मैंने उनके बारे में नहीं सुना था।

मुझे पेरियार तिडाल में ले जाने वाला एक मद्रासवासी लेखक सदानंद मेनन था और उसी ने मुझे वह पृष्ठभूमि दी जो पेरियार के जीवन और आंदोलन को समझने के लिए अति आवश्यक थी।

सदानंद ने मुझे बताया कि 19वीं शताब्दी के अंत में अंग्रेजी राज के साथ ब्राह्मण लोग इस तरह हावी हो गए जैसे वे कुछ समय से नहीं रहे थे। वे भारतीय सामाजिक जीवन में, व्यवसायों में और राष्ट्रवादी आंदोलन के शुरू होने में हावी थे। किंतु मद्रास प्रांत (जिसमें तमिलनाडु और अन्य क्षेत्र आते थे) बहुत विशाल था, मद्रास एक बंदरगाह था और इस प्रांत की अर्थव्यवस्था का विकास हुआ, तो अन्य मध्य जातियां भी अपने प्रमुख व्यक्तित्व पैदा करने लगीं। मध्य जातियों के इन लोगों में से अनेक पेरियार के अपने परिवार की तरह संपन्न थे, उनमें से अनेक तो जमींदार थे, कुछ अपने बेटों को ऑक्सफोर्ड और केम्ब्रिज भेजने की स्थिति में थे। जैसे ही ये लोग मध्य जातियों से उभरे, ब्राह्मणों के जाति संबंधी प्राचीन प्रतिबंधों को बनाए रखना आसान नहीं रहा होगा। पेरियार ने बस यह किया कि वह अस्वीकार की इस मनःस्थिति को गैर–ब्राह्मण जनमानस तक ले गए।

सदानंद ने बताया, 'उनका संप्रेषण का तरीका सांस्कृतिक था। स्वाभिमान आंदोलन ने तीन या चार अखबार एक साथ शुरू किए। ये शिक्षा पर अत्यधिक जोर देते थे। 1930 के दशम में, आंदोलन ने जो पद्धतियां अपनाई, उनमें स एक थी सामाजिक प्रवचन करो, भाषण मत पिलाओ। एक शिक्षित स्वयं सेवक शहर की किसी मलिन बस्ती में अथवा गांव के चौराहे पर जाता और कागज से जोर–जोर से पढ़ने लगता था। थोड़ी ही देर में उसके आसपास भीड़ जमा हो जाती और वह जो कुछ पढ़ रहा होता, स्वाभिमान आंदोलन की विचारधारा के अनुसार उसकी विवेचना करता।

आंदोलन के कारण बनी सांस्कृतिक क्षीणता अथवा शक्तिहीनता की स्थिति का जो विश्लेषण सदानंद ने किया, वह लगभग सचमुच सही था। यह मूर्तिभंजन में था, यह पेरियार के भाषणों की अतिशयोक्तियों और सादगी और अंतर्विरोधों में था, जहां शब्दों से शब्दों के लिए ही प्रेम किया गया प्रतीत होता था और जहां भाषणों को, उनका आनंद उठाए जाने के लिए दंभ पर दंभ लादकर बढ़ाना होता था। किंतु, उसी के बराबर पेरियार के अनुयायियों का जुनून भी था। पेरियार ने इन लोगों में किसी चीज को छू लिया था, किसी ऐसी चीज को तर्क और ऐतिहासिक शुद्धता के प्रति सम्मान से भी अधिक गहरी थी, उसका भी तो हिसाब रखना था।

फिर 1938 में हिंदू विरोधी आंदोलन हुआ। 1937 में सीमित मताधिकार पर राज्य विधानसभा के चुनाव हुए थे और उसमें कांग्रेस की सरकार बनी थी। यह सरकार स्कूलों में हिंदी को अनिवार्य करना चाहती थी। तमिल विद्वानों और शिक्षाविदों और पेरियार और उसके गुट ने एक आंदोलन शुरू कर दिया।

'एक शाम पेरियार बोलने आए। जब उन्होंने बोलना शुरू किया तो दिन का प्रकाश था और जब अंधेरा हुआ तो पेट्रोमैक्स जला दिए गए। वह मंझोले कद के, दाढ़ी वाले स्थूलकाय व्यक्ति थे। वह तमिल धोती और काली कमीज पहने थे और उनके एक कंधे पर शॉल पड़ी हुई थी।

'वह समझा रहे थे कि कैसे हिंदी भाषा अंग्रेजी को नष्ट कर देगी और अंग्रेजी के इस नाश से तमिलनाडु का क्या नुकसान होगा। कालांतर में तमिल भाषा हिंदी से पीछे हो जाएगी। भाषा का पतन हुआ, तो संस्कृति और समाज से जुड़ी सभी चीजो का पतन हो जाएगा। सभी श्रोता उनकी इस बात से सहमत हुए।

सात वर्ष पहले, गांधी अहिंसक राजनीति की यात्रा के विचार पर पहुंचे थे। अहमदाबाद स्थित अपने आश्रम में बहुत दिनों तक दिनों तक चिंतन करने के बाद, गांधी को यह विचार सूझा था कि वहां से समुद्र तक पैदल जाया जाए और नमक बनाया जाए, अद्‌भुत नाटक था। जिसका एक निश्चित भौतिक लक्ष्य था और अनिश्चित परिणाम और यह सविनय अवज्ञा का एक प्रतीकात्मक कार्य भी था, क्योंकि नमक जो इतनी सस्ती, इतनी आवश्यक और गरीबों के भी इस्तेमाल की वस्तु थी, विदेशी सरकार के एकाधिकार में थी। गांधी की 1931 की नमक यात्रा कई दिनों तक चली, इसने राष्ट्रीय आन्दोलन में नई जान और नई ऊर्जा फूंक दी और 1938 में तमिलनाडु में हुई हिंदी विरोधी यात्रा ने द्रविड़ हित को साधा : राज्य के कांग्रेस प्रशासन ने स्कलों में हिन्दी को अनिवार्य बनाने के विचार को त्याग दिया।'

'जब मैंने कला की अपनी पढ़ाई पूरी की, तो उस कॉलेज के एक प्रोफेसर ने मुझ पर जोर दिया कि मैं इंजिनियर की पढ़ाई करूं। इसलिए, मैंने इंजीनियरिंग कॉलेज में आवेदन कर दिया। मुझे खुली स्पर्धा में प्रवेश नहीं मिल पाता, क्योंकि ब्राह्मण लड़कों के अंक बहुत अधिक थे। किंतु यह मेरा और मेरे जैसे लोगों का जो पिछड़े, गैर–ब्राह्मण समुदायों से थे सौभाग्य था कि पेरियार के एक और आंदोलन की बदौलत, ऐसे पिछड़े, समुदायों के लिए कुछ अतिरिक्त सीटें आरक्षित थीं यदि पिछड़े समुदायों के लिए यह आरक्षण नहीं होता, तो मैं इंजीनियर नहीं बन पाता। जब मैं यह कहता हूं कि मेरा कॉलेज में जाना एक बड़ी बात थी, तो उससे मेरा यही अभिप्राय है।

'अब मैं आपको यह बताऊं कि जब मैंने इंजीनियरिंग कॉलेज में दाखिला लिया तो मैंने देखा कि होस्टल में मेस में ब्राह्मण लड़को को रसाईघर के सबसे निकट एक बंद जगह में भोजन कराया जाता था और इस बंद जगह को एक लकड़ी की दीवार से शेष मेस से अलग कर दिया गया था। मेस के सारे रसोइए ब्राह्मण थे। इसलिए मेस के फायदों का बहुत बड़ा हिस्सा ब्राह्मणों को मिलता था। इससे हमें परेशानी हो गई। हम जल्दी जाने लगे और उस बंद जगह में बैठ जाते। हमारी संख्या क्योंकि ब्राह्मणों से अधिक थी, इसलिए अंततः वे उस दीवार को हटाने के लिए राजी हो गए और उसके बाद वहां साझा मेस हो गया। देखिए, जब तक हम चुप रहेंगे, तब तक वे कुछ न कुछ करने की कोशिश करेंगे। जैसे ही हम अपना हक जताने लगेंगे, उनमें उसका विरोध करने का दुःसाहस नहीं होगा।

मंदिरों के तराशें हुए गुंबदों, अपने विशेष खाद्य पदार्थों, इडली और डोसा, अपने संगीत और नृत्य, अद्‌भुत कांस्य कृतियों वाले संग्रहालय के कारण मद्रास आगंतुकों को आज भी पूर्ण संस्कृति का आभास दे सकता है। यह समझने में समय लगा कि वहां हड़पने की कार्रवाई हुई थी, कि ब्राह्मण बचाव की मुद्रा में थे, यद्यपि वे अभी भी संगीतज्ञ और नर्तक थे, अभी भी रसोइए थे, अभी भी मंदिरों के पुजारी थे।

एक संस्कृति के बिगड़ने पर शोक न करना कठिन था। किंतु ब्राह्मणी हित को यदि ऐसा कोई हित था तमाम भारतीय हितों से अलग–अलग नहीं किया जा सकता। एक संस्कृति के बिगड़ने को माननीय के. वीरमणि के उत्थान को, ब्राह्मणों के पलायन और बदलाव को अपेक्षाकृत अधिक सामान्य ओर प्रगतिगामी आंदोलन के अंग के रूप में देखना अधिक अच्छा होता।

सात या आठ वर्ष पूर्व, तमिलनाडु के उत्तर में, एक किसान विद्रोह अथवा एक माओवादी विद्रोह हुआ। इसे दबा दिया गया था। स्वाधीनता के बाद के लगभग 40 वर्षों में, भारतीय राज्य का देश के अनेक हिस्सों में अनेक प्रकार के विद्रोहों से निपटना पड़ा था। राज्य ने सीख लिया था कि कैसे संभाला जाए, कब सख्ती बरती जाए, कब जाने दिया जाए।

साभार :
पेरियार महान
पेज संख्या 99 से 105 तक
शीलप्रिय बौद्ध

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

हिंदू और उनके सामाजिक विवेक का अभाव

जो भी व्यक्ति अस्पृश्यों की दयनीय स्थिति से दुखी होता है, तो वह यह कहकर शुरू करता है, 'हमें अस्पृश्यों के लिए कुछ करना चाहिए।' लेकिन इस समस्या को जो लोग हल करना चाहते हैं, उनमें से शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जो यह कहता हो कि 'हमें हिंदुओं को बदलने के लिए भी कुछ करना चाहिए। यह धारण बनी हुई है कि अगर किसी का सुधार होना है तो वह अस्पृश्यों का होना है, मानो अस्पृश्यता उनके भ्रष्ट होने के कारण है और अपनी हालत के लिए वे स्वयं जिम्मेदार है। हम अपना जो भी लक्ष्य बनाएं, वह अस्पृश्यों के लिए हो। हिंदू के बारे में कुछ भी नही किया जाना है उनकी भावनाएं, आचार–विचार और आदर्श उच्च हैं। वे पूर्ण हैं, उनमें कहीं कोई खोट नहीं है। वे पापी तो हैं ही नहीं।

असलियत क्या है? यह तर्क कि हिंदुओं में कोई दोष नहीं है और अस्पृश्य जो कष्ट झेलते हैं, उसके लिए वे स्वयं जिम्मेदार हैं, ठीक वैसा ही है, जैसा कि यहूदियों के साथ अमानवीय व्यवहार करने पर अपने बचाव मे ईसाई देते हैं। श्री लुइस गोल्डिंग ने इन यहूदियों की तरफ से ईसाइयों को करारा जवाब दिया है। यहूदियों की समस्या के मूल का विवेचन करते हुए लुई गोल्डिंग का कहना है :

''मैं जिस अर्थ में यहूदियो की समस्या को असलियत में ईसाई समस्या समझता हूं, उसको स्पष्ट करने के लिए एक बहुत ही सीधी–सी मिसाल देता हूं। मेरे ध्यान में मिश्रित जाति का एक आयरिश शिकारी कुत्ता आ रहा है। इसे मैं बहुत दिनो से देखता हूं। यह मेरे दोस्त जॉन स्मिथ का कुत्ता है, नाम है पैडी। वह इसे बेहद प्यार करते हैं। पैडी को स्कॉच शिकारी कुत्ते नापसंद है। इस जाति का कोई भी कुत्ता उसके आस–पास बीस गज दूर से भी नहीं निकल सकता और कोई दिख भी जाता है, तो वह भूंक–भूंककर आसमान सिर पर उठा लेता है। उसकी यह बात जॉन स्मिथ को बेहद बुरी लगती है और वह उसे चुप करने का हर संभव प्रयत्न भी करते हैं क्योंकि पैडी जिन कुत्तों से नफरत करता है, वे बेचारे चुपचाप रहते हैं और कभी भी पहले नहीं भूंकते। मेरा दोस्त, हालांकि पैडी को बहुत प्यार करता है, तो भी वह यह सोचता है, और जैसा कि मैं भी सोचता हूं, कि पैडी की यह आदत बहुत कुछ उसके किसी जाति–विशेष होने पर उसके स्वभाव के कारण है। हमसे किसी ने यह नहीं कहा कि यहां तो समस्या है, वह स्कॉच शिकारी कुत्ते की समस्या है और जब पैडी अपने पास के किसी कुत्ते पर झपटता है जो बेचारा टट्टी–पैशाब वगैरह के लिए जमीन सूंघ–सांघ रहा होता है, तब उस कुत्ते को क्या इसलिए मारना–पीटना चाहिए कि वह वहां अपने अस्तित्व के कारण पैडी को हमला करने के लिए उकसा देता है।

यहां यदि हम पैडी की स्थिति में हिंदू को और स्कॉच शिकारी कुत्ते की स्थिति में अस्पृश्यों को रखकर विचार करें तो हम देखेंगे कि लुइस गोल्डिंग का तर्क हिंदुओं के संबंध में भी उतना ही लागू होगा, जितना ईसाइयों पर होता है। अगर गोल्डिंग की बात मानी जाए तो यहूदियों की समस्या वास्तव में ईसाइयों की समस्या है, तब अस्पृश्यों की समस्या भी मूलतः हिंदुओं की समस्या है।

क्या हिंदुओं को इसका अहसास है? क्या वे मानते हैं कि अस्पृश्य उनके लिए समस्या है? क्या उन्हें इसकी चिंता है? क्या वे इस पर विचार करते हैं? सचाई जानने के लिए कई बातें देखनी होंगी। एक कसौटी तो यही है कि इस विषय पर कितना साहित्य रचा गया है। मानक कसौटी के रूप में हम अमरीका में नीग्रो लोगों के बारे में रचे गए साहित्य को लें। हमें जानकर आश्चर्य होता है कि अमरीका में नीग्रो लोगों के संबंध में ढेर सारी सामग्री छपी है। कहा जाता है कि नीग्रो समस्या के संबंध में ग्रंथों की सूची तैयारी की जाए, तो कई लाखों पुस्तकों की सूची बन जाएगी। वास्तव में इस विषय पर असंख्य पुस्तकें लिखी हुई हैं। यही इस बात का सबसे बड़ा सबूत है कि श्वेत लोगों के लिए यह कितनी बड़ी समस्या है। इस समस्या ने अमरीका में वहां के सभी वर्ग के लोगों को कई पीढ़ियों तक प्रेरित रखा जिनमें धार्मिक, आदर्शवादी, राजनैतिक चिंतक, राजनेता, दानी, समाज विज्ञानी, राजनीतियों, व्यापारियों के साथ–साथ साधारण नागरिक भी आते हैं।

भारत में अस्पृश्यों पर कितना साहित्य छपा है? पांच–छह पैमफ्लैटों से ज्यादा नहीं।

दूसरी कसौटी सामाजिक व्यवहार है। मैं समाचार–पत्रों में छपी दो घटनाएं उद्धत करना चाहता हूं।

''तईस फरवरी को दिन में करीब ग्यारह बजे लखनऊ के बेगमगंज में लगभग बारह–तेरह लोग मिट्टी खोद रहे थे। तभी एक मिट्टी का ढूह गिर पड़ा और वे सभी मिट्टी में दब गए। मिट्टी हटाए जाने पर एक लड़के और छह औरतों को निकाल लिया गया। उनमें से केवल एक औरत जिंदा बची, जो मीरपुर की रहने वाली थी। उसे गहरी चोटें आई थीं और उसकी हालत नाजुक थी। बेगमगंज के निवासियों ने चारपाई देने से इंकार कर दिया, जिस पर उस औरत को लिटाया जाता। अंत में एक मुसलमान ने चारपाई दी। लेकिन कोई हिंदू इस बात के लिए तैयार नहीं था कि उस घायल औरत को चारपाई पर उठाकर उसके घर पहुंचा दे। अंत में एक जमादार को बुलाया गया, जो उसे उसके घर पहुंचा कर आया।

अस्पृश्यों के प्रति हिंदुओं की हृदयहीनता का सबसे बड़ा उदाहरण निम्नलिखित घटना से प्रकट होता है, जिसके बारे में संग्राम के 10 जुलाई 1946 के अंक में प्रकाशित संवाददाता की एक रिपोर्ट में बताया गया है। संवाददाता लिखता है :

आठ जुलाई 1946 को गोवा के म्हाप्से गांव में स्थित अजिल नामक आश्रम में एक औरत मर गई। यह आश्रम ईसाई चलाते हैं। यह पता चला कि वह औरत हिंदू थी। उसका कोई सगा–संबंधी नहीं था। जब यह पाया गया कि उसका क्रियाकर्म करने वाला कोई नहीं है तो गांव के हिंदुओं ने मिलकर कफन और अर्थी के लिए चंदा इकट्ठा किया। वे उसके शव को अनाथ आश्रम से बाहर ले आए। उसी समय कुछ अस्पृश्य भी वहां पहुंच गए, जो मृतक औरत को जानते थे। उन्होंने उसकी पहचान कर ली। जैसे ही हिंदुओं को पता चला कि मरने वाली औरत अस्पृश्य थी तो वे इधर–उधर खिसक गए। अस्पृश्यों ने हिंदुओं से कहा कि उन्होंने मृतक औरत के नाम पर जो चंदा इकट्ठा किया है, वह उन्हें दे दें। हिंदू मुकर गए और उन्होंने कहा कि वह चंदा तो उस औरत को हिंदू जानकर इकट्ठा किया गया था। वह हिंदू नहीं, बल्कि उक अस्पृश्य थी, तो उसके क्रियाकर्म पर यह पैसा खर्च नहीं किया जा सकता। अस्पृश्यों ने उसके अंतिम संस्कार का खुद ही इंतजाम किया। अस्पृश्यों को अपने प्रति हिंदुओं के प्रेम और सद्भाव का अच्छा सबूत मिला।

निम्नलिखित समाचार 2 अक्टूबर 1925 के 'मिलाप' से लिया गया है। पत्र का संवाददाता लिखता है :

'रूद्रप्रयाग से समाचार मिला है कि सितंबर के पहले सप्ताह की एक शाम को एक हरिजन रूद्रप्रयाग की धर्मशाला में आया। जब उसे पता चला कि वहां रोजाना रात को एक बाघ आता है तो उसने धर्मशाला के प्रबंधक से कहा कि बाघ से बचने के लिए वह उसे रात–भर के लिए धर्मशाला के किसी कोने में पड़ा रहने दे। पर उस जालिम प्रबंधक ने एक न सुनी और धर्मशाला का फाटक बंद कर दिया। अभागा हरिजन धर्मशाला के बाहर कोने में पड़ा रहा। रात–भर उसे बाघ का डर सताता रहा। जब रात ढल रही थी तो बाघ आया और हरिजन पर टूट पड़ा। वह आदमी काफी तगड़ा था। मौत को सामने देख वह निडर हो गया। उसने बाघ को गर्दन से पकड़ लिया और चिल्लाया, 'मैंने बाघ को पकड़ रखा है। आओ और इसका काम तमाम कर दो। पर ऊंची जाति के प्रबंधक ने न तो फाटक ही खोला, और न ही किसी अन्य तरीके से उसकी मदद की। इधर हरिजन की पकड़ ढीली पड़ गई और बाघ जान बचाकर भाग गया। फिलहाल वह व्यक्ति श्रीनगर (गढ़वाल) के अस्पताल में घायल अवस्था में पड़ा है, जहां उसने अपने को खुद दाखिल करवाया। उसकी हालत नाजुक बताई जाती है।

इन उदाहरणों में व्यक्त हृदयहीनता से पता चलता है कि हिंदू को अस्पृश्यों के साथ व्यवहार करते समय उचित–अनुचित का कोई ध्यान नहीं रहता और वह उनकी बिल्कुल भी परवाह नहीं करता।

तीसरी कसौटी अस्पृश्यों की सेवा और उनके प्रति त्याग–भावना है। यहां भी हम नीग्रो लोगों का जीवन–स्तर ऊंचा उठाने के लिए अमरीकियों के प्रयासों को मानक मानकर चलते हैं। इस संबंध में कुछ आंकड़े

वसीयतकर्ता	राशि (डालरों में)	वसीयतकर्ता	राशि (डालरों में)
केन	50,000	मैसन	1,00,000
हार्टन	5,000	नाउनबर्ट	40,000
ट्रागटन	1,60,600	हैरीसन	2,30,000
ऑटिंगर	500	मंगर	75,000
[illegible]	35,000	कोरलिस	45,000
जरफ्की	1,000	रोजनबैनिन	1,000
स्ट्रोक	500	बर्टन	1,000
किडिर	5,000	कॉनरॉय	1,00,000
क्लोडिन	10,000	कैंट	10,000
वुड	500	ड्यूक	1,40,000
हार्कनेस	12,50,000	मर्कीलिएट	5,000
बीटी	2,90,000	मैसी	25,000
मारक्वैट	5,000	निकोलस	20,000
न्यूटन	5,000	गैरटसन	1,50,000
हमिंगटन	25,000	हैचर	20,000
फैल्प-स्टोक्स	2,80,000	राइट	10,000
बटलर	30,000		

यह आंकड़े 1930 से पहले के हैं। इसमें शेष राशि शामिल नहीं है। नीग्रो लोगों में शिक्षा के प्रसार के लिए विद्यमान शिक्षा कोषों पर भी विचार कीजिए :

(1) दि एवरी फंड,
(2) दि विलास बीक्वेस्ट,
(3) दि अफ्रीकन फंड,
(4) दि बकिंघम फंड,
(5) दि जार्ज वाशिंगटन एजूकेशनल फंड,
(6) दि माइनर फंड,
(7) दि स्टीवर्ड मिशनरी फांउडेशन,
(8) दि डेनियल हैंड फंड,
(9) दि जॉन स्लैटर फंड, और
(10) दि फैल्प–स्टोक्स फंड

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कोष भी हैं, जैसे कि कैरनेगी कोरपोरेशन ज्यूलियस रोजनवाल्ड फंड और दि रौक फैलर फाउंडेशन, जो नीग्रो लोगों की सहायता करते हैं। ये कोष कितना धन वितरित करते हैं, यह मालूम नहीं है। परंतु यह लाखों से ऊपर होगा।

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

नीग्रो लोगों की शिक्षा के लिए धार्मिक संस्थानों द्वारा किए जाने वाले खर्च को भी देखें। यहां कुछ आंकड़े दिए जा रहे हैं :

	वार्षिक खर्च (डालरों में)	नीग्रो शिक्षा के लिए स्थाई कोष	स्कूलों की इमारत आदि का मूल्य (डालरों में)
1. अमरीकन बैपतिस्त होम मिशन बोर्ड	116,247	1,597,700	3,594,251
2. अमरीकन चर्च इंस्टीट्यूट फारि नीग्रोज (एपिसकोपल)	185,100	450,000	3,000,000
3. अमरीकन मिशनरी एसोसिएशन	368,057	3,228,421	3,2000,000
4. चर्च आफ क्राइस्ट (डिसीपिल्स) यूनाइटेड क्रिश्चियन मिशनरी सोसायटी	91,072	----------	5000,000
5. लूथरेन इवैंजलिकल साइनोडिकल कांफ्रेंस आफ नार्थ अमरीका बोर्ड कलर्ड मिशन	74.900	----------	175,000
6. मैथोडिस्ट एपिसकोपल चर्च बोर्ड आफ एजूकेशन इस्टीट्यूशन फार नीग्रोज	259,264	1,962,729	500,000
7. मैथोडिस्ट एपिसकोपल चर्च यीमेंस होम मिशनरी सोसायटी	104,975	----------	360.000
8. प्रेसबाइटेरियन चर्च इन दि यू.एस.ए. डिविजन आफ मिशन फार कलर्ड पीपुल	405,327	1,994,032	3,560,000
9. यूनाइटेड प्रेसबाइटेरियन चर्च बोर्ड आफ मिशन फार फ्रीमैन	98,000	645,000	1,000,000

ऐसा अनुमान है कि 1865 से लेकर 1930 तक धार्मिक और खैराती संस्थाओं द्वारा नीग्रो लोगों के उत्थान पर कुल 135,000,000 डालर खर्च किए गए। इस धनराशि में से 85,000,000 डालर श्वेत लोगों द्वारा दिए गए हैं।

अस्पृश्यों के उत्थान के लिए हिंदुओं ने क्या सेवाएं और क्या त्याग किया है। हरिजन सेवक संघ ही केवल एक ऐसा संगठन है, जिस पर हिंदू गर्व कर सकते हैं। इसकी कुछ पूंजी दस लाख रूपयें से अधिक नहीं है। फुटकर और बेकार के कार्यों पर इसका खर्च प्रतिवर्ष कुछ हजार रूपये से ज्यादा नहीं है। यह कोई कल्याण कोष नहीं है। असल में यह एक राजनैतिक कोष है। इस कोष का प्रयोजन मुख्य रूप से अस्पृश्यों को अपने वोट हिंदुओं के लिए डालने के लिए राजी करना है।

यह अंतर क्यों है? अमरीका में लोग अपने यहां नीग्रो लोगों के उत्थान के लिए सेवा और त्याग कर इतना सब कुछ क्यों करते हैं और अस्पृश्यों के उत्थान के लिए हिंदू लोग कुछ भी क्यों नहीं करते हैं? इसका एक ही उत्तर है कि अमरीकियों में सामाजिक विवेक है, जब कि हिंदुओं में इसका सर्वथा अभाव है। ऐसी बात नहीं कि हिंदुओं में उचित–अनुचित, भला–बुरा या नैतिकता–अनैतिकता का कोई विचार नहीं है। हिंदुओं में दोष यह है कि अन्य के संबंध में उनका तो नैतिक विवेक है, वह सीमित वर्ग, अर्थात अपनी जाति के लोगों तक ही सीमित है। जैसा कि श्री एच.जे. पैटन कहते हैं :

कोई व्यक्ति नैतिक दृष्टि से अच्छा हुए बिना भी किसी विशिष्ट समाज में एक अच्छा व्यक्ति हो सकता है। जो व्यक्ति अपने जीवन में कानून–सम्मत अपनी एक पृथक जीवन–चर्या बना लेता है और तदनुसार आचरण करता है, और उसके जीवन में कोई ऐसा गुण हो सकता है, जिसे हम नैतिक गुण समझने की गलती कर जाएं। ऐसा व्यक्ति किसी भी समाज का हो सकता है, चाहे वह चोरों या डाकुओं का कोई गिरोह ही क्यों न हो। हालांकि चोरों या डाकुओं में भी कोई व्यक्ति ऐसा होता है, जिसे वे आदर देते हैं। लेकिन वह चोर या डाकू इस कारण आदरणीय व्यक्ति तो नहीं हो सकता। नैतिक दृष्टि से कोई व्यक्ति अच्छा तभी कहा जाएगा, जब वह किसी सीमित समाज में ही अच्छा व्यक्ति नहीं कहा जाए, बल्कि उसे उस समाज के बाहर भी लोग अच्छा कहें। समाज कई समाजों का हो सकता है, जिसके उद्देश्य में सभी समाजों के उद्देश्य अंतर्निहित होते हैं। ऐसे समाज से परे कोई समाज नहीं होता है, जिससे कर्तव्यों में कोई अंतर्विरोध उत्पन्न होने की कोई गुंजाइश रहे।

अस्पृश्य लोग हिंदुओं के समाज के नहीं हैं और हिंदू भी यह नहीं समझते हैं कि वे और अस्पृश्य, दोनों एक ही समाज के लोग हैं। यही कारण है कि हिंदुओं में नैतिक दृष्टि से अस्पृश्यों के प्रति कोई चिंता या ममत्व नहीं होता।

चूंकि हिंदुओं में इस प्रकार के विवेक का अभाव होता है, इसलिए उनके हृदय में हठधर्मिता और अन्याय के विरूद्ध, जिनसे अस्पृश्य लोग पीड़ित हैं, न्यायोचित रोष उत्पन्न नहीं होता। वे इस हठधर्मिता और अन्याय को गलत नहीं समझते और कुछ भी मानने के लिए तैयार नहीं हैं। हिंदुओं में विवेक का अभाव अस्पृश्यता के निवारण के रास्ते में एक बड़ी बाधा है।

साभार :
बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर
सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–9
पेज संख्या 149 से 156 तक
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

दूसरों के विचार सुनें

''जब लोग बोलें, तो पूरी तरह सुनें। ज्यादातर लोग कभी सुनते ही नहीं हैं।''

अगर आप सोचते हैं कि आप सब कुछ जानते हैं, तो इस बात की संभावना है कि आप खुद ही उधेड़बुन में व्यस्त होंगे और यह सोचने में भी कि आप कितने महान हैं। आप इसमें इतने व्यस्त होंगे कि आपके पास किसी और की बात सुनने की फुरसत ही नहीं होगी। लेकिन मैं जातना हूँ कि आप ऐसे नहीं हैं। कोई भी व्यक्ति, चाहे उसका पद या काम कितना ही छोटा क्यों न हो, आपको कोई न कोई बढ़िया सुझाव दे सकता है। लिफ्ट चलाने वाले, कार पार्क अटेंडेंट, कैंटीन स्टाफ, सफाईकर्मी आदि से बात करके तो देखें! और सबसे महत्वपूर्ण बात, अपनी टीम के कर्मचारियों की बात सुनें। आखिर वे ही तो हैं, जिन्हें संसाधनों और प्रॉडक्ट्स के साथ काम करना होता है। वे सामने की कतार में हैं और उनके पास विचार, अच्छे विचार हो सकते हैं। आपको हर छोटी–छोटी बात पर उनका परामर्श लेने की जरूरत नहीं है, लेकिन बड़ी बातों पर .... ऐसा जरूर करें। उनसे बात करें, उनकी राय लें, उनके विचार पूछे, उनकी रचनात्मकता का लाभ लें।

''उनसे बात करे, उनकी राय ले, उनके विचार पूछें, उनकी रचनात्मकता का लाभ ले।''

जाहिर है, आपको उन्हें सावधानी से यह जता देना होगा कि आप उनकी बात सुन जरूर रहे हैं, लेकिन फैसला आप करेंगे। आप उनकी बात सुन रहे हैं, इसका यह मतलब नहीं है कि आप हर विचार पर अमल करेंगे। इस भावना को तत्काल कुचल दें कि आपको उनके सुझाव के अनुरूप काम करना ही होगा। इसमें भयंकर मुश्किल है। पहले सुनें, फिर सुनी हुई बातों, अपने अनुभव और व्यावहारिकता पर अच्छे से विचार करके फैसला करें। अगर आप उनकी दी गई जानकारी का जरा भी इस्तेमाल नहीं करत हैं, तो सुनने का कोई फायदा नहीं हैं, क्योंकि इससे वे बुरी तरह निराश हो जाएँगे – 'बॉस को अपने विचार बताने से क्या फायदा? वह उनका कभी इस्तेमाल ही नहीं करता है।

आपको दूसरों के विचार सुनना चाहिए, यह कहे बिना कि आप उनके विचारों पर अमल जरूर करेंगे। ऐसे में अगर आप उनकी सलाह विपरीत काम भी कर देंगे, तब भी वे निराश नहीं होंगे। बहरहाल, आपको उन्हें यह सोचने देना चाहिए कि आपकी सकल रणनीति में उनके विचार भी शामिल किए गए हैं।

मैं यह बात जानता हूँ कि हर टीम का हर सदस्य अपने मैंनेजर को इस बारे में थोड़ी बहुत उपयोगी जानकारी दे सकता है कि टीम या कंपनी में क्या गड़बड़ है या उसे बेहतर कैसे बनाया जा सकता है। अगर आप इसका लाभ लेते हैं, अच्छे सवाल पूछते हैं और बिना पूर्वाग्रह के सुनते हैं (या उन पर बात करते हैं), तो आप तत्काल ज्यादातर मैनेजरों से बेहतर बन जाएँगे।

साभार :
मैनेजमेंट के नियम
पेज संख्या 73 से 74 तक
रिचर्ड टेंपलर

ज्ञान का अर्थ

उपरोक्त भक्ति युग में ज्ञान का एक ही अर्थ था कि मानव ने इस दुनिया से अलग परलोक के सम्बन्ध में जो कल्पनायें कर रखी है उन कल्पनाओं की जानकारी प्राप्त करना, उन्हें याद करना और उन पर अन्धविश्वास करना। आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक मोक्ष पुर्नजन्म तथा भाग्यवाद आदि काल्पनिक बातों में विवेकशील मानव का बहुमूल्य समय नष्ट होता था। जिन बातों को बहुमूल्य ज्ञान कहा जाता था और जिस ज्ञान की प्राप्ति के लिये कुछ लोग अपना पूरा जीवन लगा देते थे, आज उस ज्ञान को कोई टके सेर नहीं पूछता। दुनिया में सैकड़ों विश्वविद्यालय है कालिजों की संख्या तो हजारों में है। उनमें पढ़ाए जाने वाले विषय भी सैकड़ों हैं। परन्तु जिस ज्ञान को प्राप्त करने के लिये मध्य युग के ऋषि महात्मा जीवन भर साधना करते थे। उस ज्ञान को किसी भी कालेज में किसी भी विषय के अन्तर्गत पढ़ाना तक उचित नहीं समझा जाता। प्रकृति की जिस सच्चाई को खोज के वैज्ञानिक खोज रहे है और विद्यार्थी हजारों प्रकार की पुस्तकों के माध्यम से पढ़ रहे हैं, मध्य युग के ऋषि मुनि प्रकृति के इन सत्यों की बात कुछ नहीं जानते थे। कहने के लिए वेद भगवान के बनाये हुए हैं और सृष्टि का पूर्णज्ञान वेदों से भरा पड़ा है। परन्तु गणित, विज्ञान, भूगोल, खगोल आदि किसी भी पढ़ाई में वेदों का ज्ञान इसीलिये नहीं पढ़ाया जाता क्योंकि वेदों में वह ज्ञान है ही नहीं।

साभार : ईश्वर की खोज
पेज संख्या 44
चौ० महाराज सिंह भारती पूर्व सांसद

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

अंधविश्वासों के प्रतीक हमारे ये त्योहार

नारी स्वातंत्र्य के इस युग में पुरूषों की गुलामी के प्रतीक इन त्योहारों को मनाने का आखिर औचित्य ही क्या है?

हमारे घरों में वर्ष के तीन सौ पैंसठ दिनों में शायद तीन सौ साठ दिन किसी न किसी छोटे–बड़े त्योहार के लिए नियत हैं। त्योहारों के साथ तरह–तरह की कथाओं, परंपराओं तथा ऊलजलूल विधिविधानों का मेल बैठा दिया गया है। जिन त्योहारों के कुछ अर्थ प्रचलित हैं, आज के युग में उन अर्थों की कोई सार्थकता दूर–दूर तक नजर नहीं आती।

प्रचलित अंधपरंपराएं

त्योहारों पर प्रचलित अंधपरंपराएं तथा लेनदेन से संबंधित मान्यताएं यद्यपि आज के लोगों को बोझ प्रतीत होती हैं, फिर भी उन्हें मानना और निभाना एक प्रकार से उनकी मजबूरी ही नहीं, नियति बन गई है। यही कारण है कि त्योहार तथा अंधपरंपराएं हम अपने लिए नहीं, दूसरों को दिखाने के लिए अथवा समाज में तथाकथित प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए मनाते हैं।

हमारी अंधविश्वासी प्रवृत्ति के जीते जागते उदाहरण वे अनेक छोटे–बड़े त्योहार हैं जिनका कोई अस्तित्व नहीं है, तो भी शिक्षित, सुसंस्कृत और तथाकथित आधुनिक परिवारों में उन्हें पूर्ण सम्मान मिल रहा है।

दशहरा, होली, दीवाली, रक्षाबंधन, भाईदूज जैसे त्योहारों की सार्थकता तो थोड़ी बहुत समझ में आती भी है, किंतु विशेषकर महिला वर्ग में प्रचलित अनेक निरर्थक त्योहारों का संबंध न धर्म से है, न शास्त्रों से, बल्कि केवल 'बुढ़िया पुराण' से है।

उन त्योहारों का मतलब सिर्फ यही समझ में आता है कि महिलाएं अंधविश्वासी प्रकृति से छुटकारा न पा सकें, अपने व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं से सर्वथा अपरिचित रहें, केवल घर संसार में ही रमी रहें और अपने अस्तित्व को भूल कर केवल परिवार और संतान के लिए ही जीवित रहें।

दूसरा अर्थ यह समझ में आता है कि हिंदू समाज के माता–पिता कन्या को जन्म देने के अपराध की सजा के रूप में बेटी की ससुराल में उन त्योहारों के माध्यम से कुछ न कुछ पहुंचाते रह कर अपनी बेटी के सुखों की कीमत चुकाते रहे। अन्यथा आज भी ऐसे उदाहरण न मिलते जब त्योहारों पर मायके से मिठाई वस्त्रादि न भेजे जाने के कारण बहू को सास, ननद के ही नहीं, पति के ताने भी मिला करते हैं।

महिलाओं के व्रत त्योहार

महिला वर्ग में प्रचलित उन तमाम त्योहारों में कुछ त्योहार करवाचौथ, तीज, वटसावित्री व्रत, बहुला चौथ, बंसत पंचमी, नागपंचमी, सकट चौथ, हलछट आदि हैं। इन छोट–मोटे त्योहारों को मना कर महिलाएं आश्वस्त हो जाती हैं कि उनका सुहाग अमर रहेगा, उनकी संतान योग्य, प्रतिभाशाली तथा दीर्घजीवी होगी तथा उनके जीवन में धन और समृद्धि की भरमार रहेगी।

भाई, पति और पुत्र आदि के साथ इन त्योहारों का संबंध इस प्रकार जोड़ दिया गया है कि परंपरागत तथाकथित आधुनिक परिवारों की कन्याएं विवाह से इन अंधविश्वासों के घेरे में फंसने लगती हैं। विवाह होने के बाद वे और अंधविश्वासी बन जाती है।

विवाह की वेदी पर ही उनको मानसिक रूप से भय से त्रस्त कर दिया जाता है कि कन्यादान की प्रथा द्वारा वह जिस पुरूष को दान कर दी गई, उसके लिए ही अब उसका अपना जीवन है। उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं उसके जीवन की पूर्णता उस पुरूष से ही है जिसे उसके पति का नाम दिया गया है।

ससुराल आते–आते उसका जीवन दब जाता है और आए दिन मनाए जाने वाले त्योहार से पगपग इस भय से त्रस्त किए रहते हैं कि अमुक त्योहार न मनाने से तुम्हारे सुहाग का अनिष्ट होगा, तुम्हारी गोद नहीं भरेगी, तुम्हारे परिवार का सुख कम होगा।

यही कारण है कि बड़ी–बड़ी डिगरियों से प्राप्त ज्ञान इन अंधविश्वासों के समक्ष धराशायी हो जाता है और वे पति का प्यार पाने के लिए कभी चंद्रमा को अक्षत चढ़ा चर पूजती हैं, कभी बरगद के वृक्ष की डाल को घर में मंगा कर पूजती हैं तो कभी आठ प्रहर तक निर्जला व्रत करती हैं। कभी–कभी ऐसा करने में उन्हें हंसी भी आती है तो भी बिना इन त्योहारों को मनाए उन्हें पूरा संतोष नहीं मिलता, कोई न कोई अंधविश्वास भय बनकर उनके मन में समाया रहता है।

तो फिर आइए, जरा इन त्योहारों को परख कर सोचें कि वास्तव में ये त्योहार कुछ हैं भी या मात्र अंधविश्वास ही हैं।

करवाचौथ

छोटी–बड़ी सभी हिंदू जातियों में यह एक बहुप्रचलित त्योहार है, जिसे सौभाग्यवती स्त्रियां मनाती हैं जबकि इसके मनाने के तरीकों में काफी भिन्नता पाई जाती है।

कहा जाता है कि जब पांडव वन चले गए थे तो द्रौपदी ने पति प्रसन्नता के लिए यह व्रत किया था। तब से तमाम आडंबरों और हास्यापद विधिविधानों के साथ यह त्योहार चला आ रहा है। व्रत करके शाम को चंद्रमा की पूजा करने के बाद अन्न ग्रहण करती हैं जबकि यह बात सिद्ध हो चुकी है कि चांद कोई देवता नहीं, उपग्रह है।

अजीब बात यह है कि जो पत्नियां अपने पति को जी भर कर सताती हैं, और जो इस त्योहार के दिन भी उनसे लड़ती–झगड़ती हैं, वे भी इस त्योहार के द्वारा पति का प्यार पाने की कामना करती हैं। जबकि सत्य यह है कि पति का प्यार पाने के लिए पत्नी को ऐसे त्योहार मनाने से अधिक अपने मृदुल व्यवहार द्वारा पति का हृदय जीतने की आवश्यकता होती है।

अनेक त्योहारों की तरह यह त्योहार भी लेनदेन की परंपराओं के साथ जुड़ा हुआ है।

माता–पिता इस त्योहार पर अपनी बेटी की ससुराल में सभी प्रकार की मिठाई, पकवान वस्त्रादि भेजते हैं। यदि वे ऐसा नहीं करते तो उनकी बेटी को ताने सुनने पड़ते हैं।

इसलिए कई परिवारों में इस महंगाई में यह त्योहार बोझ की तरह स्वीकारा जाता है तो भी वे इसे निभाते हैं, कर्ज लेकर ही सही। उधर अनेक परिवारों के लोग ऊपर से सुसंस्कृत और आधुनिक होते हुए भीतर से इन परंपराओं से सिर्फ इसलिए प्यार करते हैं क्योंकि इसके कारण उन्हें कुछ न कुछ प्राप्ति की आशा होती है। अतएव वे अपनी परंपराओं की दुहाई देकर अपनी स्वार्थी और लालची प्रकृति का परिचय अच्छी तरह दे देते हैं।

हरियाली तीज

हरियाली तीज श्रावण सुदी तीज को केवल स्त्रियों द्वारा मनाया जाता है। इस तिथि पर कोई विशेष पूजापाठ तो नहीं होता, किंतु घरों की बहूबेटियां हाथों में मेहंदी रचाती हैं, नए रंग बिरंगे वस्त्र पहन कर, श्रृंगार करके, चूड़ियां पहन का झूला झूलती हैं और गीत गाती हैं।

ये सारी बातें अच्छी तो लगती हैं, किंतु करवाचौथ की तरह इस त्योहार पर भी प्रत्येक बहू के मायके से कुछ न कुछ सामान भेजे जाने की इच्छा प्रत्येक सास ससुर की रहती है। बेटी को ताने न सुनने पड़े इसलिए लड़की के माता–पिता वह सब कुछ भेजने के लिए विवश हो जाते हैं जिसे भेजे जाने की परंपरा स्वार्थी और लालची लोगों द्वारा बना दी गई है। और धीरे–धीरे ये बातें लोगों की प्रतिष्ठा का प्रश्न और बेटी के सुख की कीमत के रूप में बदलती गईं।

इन लेन देन की परंपराओं के कारण यदि किसी त्योहार का अपना कुछ आनंद भी है तो यह भी खो जाता है जब तक हमारे युवा ऐसी परंपराओं का बहिष्कार नहीं करते, आज के बुजुर्गों का यह अधिकार स्वार्थवश भावी बुजुर्गों को भी विरासत में मिलता जाएगा। और ये त्योहार मात्र अंधविश्वास बने रहेंगे।

इस त्योहार के साथ जुड़े एक कथानक के अनुसार, युगों पूर्व पार्वतीजी ने शंकरजी को पति के रूप में पाने के लिए कई युगों तक तपस्या की थी। किंतु यह पता नहीं कि इस तिथि का बहरहाल उन्हीं से किस प्रकार का संबंध है। पार्वती की स्मृति में यह व्रत कन्याएं पति पाने के लिए एवं सुहागिन अपने सुहाग को अमर करने के लिए रखती हैं।

यद्यपि कहा जाता है कि यह व्रत विधवाओं के लिए वर्जित है फिर भी विधवाएं इस व्रत को रखती हैं, क्योंकि कहा जाता है कि यह व्रत आरंभ करने के बाद किसी स्थिति में भी यदि छोड़ दिया जाए तो घोर पाप होता है।

अस्वस्थता, कमजोरी तथा गर्भावस्था आदि स्थितियों में भी यह कठिन व्रत रख कर महिलाएं अपने लिए कई मुसीबतें खड़ी कर लेती हैं। विवशता की स्थिति में यह ढील दे दी गई है कि स्त्री अपने आप जल ग्रहण न करे बल्कि थाली में पानी लेकर गाय की तरह मुंह से पिए।

एक विधान यह भी है कि यदि कोई स्त्री किसी कारण से यह कठिन व्रत न कर सके तो उसके बदले पति महोदय करें। अत एव तमाम ऊल जलूल विधिविधानों सहित त्योहार संपन्न करने के बाद गरिष्ठ भोजन ग्रहण करने वाली महिलाओं को प्रायः कई दिनों के लिए कोई व्याधि अवश्य पुरस्कार में मिल जाती है। समय, बुद्धि और धन का अपव्यय होता है सो अलग।

वट सावित्री व्रत

ज्येष्ठ मास में यह त्योहार भी केवल सुहागिन स्त्रियों द्वारा मनाया जाता है। इस त्योहार का संबंध सावित्री सत्यवान की कहानी से है। स्त्रियां सावित्री की तरह वटवृक्ष की पूजा करके उस वृक्ष से अमर सौभाग्य का वरदान मांगती हैं तथा तमाम हास्यपद विधिविधानों सहित वटवृक्ष के नीचे झुंड बनाकर पूजा संपन्न करती हैं। यह भी देखा जाता है कि पूजा तो कम होती है, आपस में मनमुटाव तथा प्रपंच की बातें ज्यादा होती हैं।

समझ में नहीं आता कि आज के युग में इस तरह के त्योहारों की कौन सी उपयोगिता और सार्थकता है? कई घरों में वटवृक्ष की डाल घर में मंगा कर पूजी जाती है और सावित्रीसत्यवान की कहानी सुन कर पूजा संपन्न की जाती है। घर से बाहर वटवृक्ष पूजने वाली महिलाओं के विधिविधान देखने के लिए प्रायः राह चलते लोग एकत्र हो जाते हैं।

अतएव यह त्योहार भी मात्र अंधविश्वास ही है। जिससे कोई और अर्थ नहीं निकलता, सिवा इसके कि महिलाएं जैसे भी हो, अंधविश्वासों के घेरे से बाहर न निकलने पाएं, भले ही वे पति और पुत्र के जीवन को सुखी करने के व्यावहारिक सिद्धांतों पर अमल न करें, किंतु इन त्योहारों द्वारा उन की कल्याण कामना अवश्य करें।

बसंत पंचमी

बसंत पंचमी पर बसंती वस्त्र पहनना, बसंती रंग के भोज्य पदार्थों का सेवन करना और ऋतुराज के स्वागत में आह्लादित होना आदि बातें मन को भले ही अच्छी लगती हैं किंतु इस त्योहार को भी महिलाओं की अंधविश्वासी प्रवृत्ति के साथ जोड़ दिया गया है। करवाचौथ आदि की तरह इस त्योहार पर भी मायके से बसंती रंग की साड़ी भेजे जाने की परंपरा ने इस त्योहार के वास्तविक आनंद को कम कर दिया है। उलटे यह त्योहार कभी बेटी के मायके वालों के लिए भार बन जाता है तो कभी स्वंय पति पत्नी के बीच कलह का कारण बनता है क्योंकि यदि इस दिन कोई साड़ी नहीं मिलती तो पुरानी साड़ी पहन कर पूजा करना अपशकुन समझा जाता है।

नाग पंचमी

श्रावण मास में मनाया जाने वाला नाग पंचमी का त्योहार भी केवल कन्याओं और सुहागिनों का पर्व है। यों तो इस पर्व पर सर्वत्र हर्षोउल्लास का वातावरण होता है, कन्यांए व महिलाएं नए वस्त्र धारण करके झूला झूलती, गाती बजाती और आपस में मिलती जुलती हैं। हाथ पावों में मेहंदी रचाती हैं और कई तरह के पकवानों का स्वाद चखती हैं।

किंतु कुछ परंपराएं फिर भी महिलाओं को अंधविश्वासी बनाए रखने के लिए जोड़ दी गई हैं। पहली तो यह कि इस दिन घर के स्थान–स्थान पर दूध रख कर यह समझना कि आज के दिन यह दूध कहीं न कहीं से सर्प देवता आ कर पी जाएंगें, भले ही वह दूध बिल्ली पी जाए।

दूसरी परंपरा है घरों की लड़कियों द्वारा कपड़े की गुड़िया बनाकर उन्हें रंगीन वस्त्रों से सजा कर किसी मंदिर जैसे स्थल के पास फेंकना और घर तथा मुहल्ले के लड़कों से उन गुड़ियों को छड़ी द्वारा पिटवा कर उन के चीथडे–चीथड़े करवाना।

शायद युगों से पुरूष की दृष्टि में स्वंय को हीन समझे जाने की भावना में स्वयं स्त्रियों ने भी ऐसी घृणित परंपराओं द्वारा अपना योगदान दिया है, जिसके परिणामस्वरूप आज तक स्त्री पुरूष की दृष्टि में वैसी ही हीन, पराधीन, आश्रित और अबला है जैसी कि कपड़े की गुड़िया।

बहुला चौथ

बहुला चौथ पर गाय और बछड़े की पूजा करने के नाम पर सौभाग्यवती, पुत्रवती स्त्रियां मिट्टी की गाय व बछड़े की पूजा करके पति और पुत्र की कल्याण कामना करती हैं। कहा जाता है कि एक बार बहुला नाम की एक गाय को जंगल में एक शेर खाने के लिए झपटा।

गाय ने उस से कहा कि वह एक बार अपने बछड़े को देख आए तब आ जाएगी। गाय ने अपना वचन निभाया और शेर ने प्रसन्न होकर उसे जीवनदान दिया। बस उसी बहुला गाय के नाम पर यह त्योहार अनेक पाखंडों के साथ मनाया जाने लगा जबकि इस साधारण कहानी से जो कुछ शिक्षा मिलती है उसे याद रखना अथवा सत्यवादिता का संकल्प लेना किसी को याद न रहा।

कोई भी त्योहार मनाने से पहले कम से कम यह तो सोचना चाहिए कि आखिर उसे मनाने का उद्देश्य क्या है। यदि वह उद्देश्य केवल अपना, पति, पुत्र और परिवार की कल्याण कामना है तो भी हमें यह सोचना है कि स्त्री अपने पति, पुत्र और परिवार का कल्याण अपने गुणों, व्यवहार द्वारा कर सकती है या इन त्योहारों के द्वारा?

सच तो यह है कि हम महिलाओं की सबसे बड़ी पूजा है अपने घर संसार और परिवार के प्रति अपने कर्त्तव्यों को सही ढंग से निभाना तथा हमारा सबसे बड़ा त्योहार उन दिनों को मानना चाहिए जब हम प्रचलित अंधविश्वासों पर ध्यान दिए बिना अपने विवेक द्वारा अपने कर्त्तव्यों और उद्देश्यों पर विजय पा लें, जिसके लिए न तो व्रत की आवश्यकता होगी, न ही पाखंडों की।

साभार :
तर्क से काटिए
अंधविश्वासों का जाल
पृ.सं. 141 से 146 तक।
रचनाकार : राकेश नाथ

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

अस्पृश्यता–उसका स्त्रोत

सेवा में,

नाम .....

पता .....

.....

.....

ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो अस्पृश्यों की दयनीय स्थिति से दुखी हो यह चिल्लाकर अपना जी हल्का करते फिरते हैं कि हमें अस्पृश्यों के लिए कुछ करना चाहिए। लेकिन इस समस्या को जो लोग हल करना चाहते हैं, उनमें से शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो यह कहता हो कि 'हमें स्पृश्य हिंदुओं को बदलने के लिए भी कुछ करना चाहिए।' यह धारणा बनी हुई है कि अगर किसी का सुधार होना है तो वह अस्पृश्यों का ही होना है। अगर कुछ किया जाना है तो वह अस्पृश्यों के प्रति किया जाना है और अगर अस्पृश्यों को सुधार दिया जाए, तब अस्पृश्यता की भावना मिट जाएगी। सवर्णों के बारे में कुछ भी नहीं किया जाना है। उनकी भावनाएं, आचार–विचार और आदर्श उच्च हैं। वे पूर्ण हैं, उनमें कहीं भी कोई खोट नहीं है। क्या यह धारणा उचित है? यह धारणा उचित हो या अनुचित, लेकिन हिंदू इसमें कोई परिवर्तन नहीं चाहते? उन्हें इस धारणा का सबसे बड़ा लाभ यह है कि वे इस बात से आश्वस्त हैं कि वे अस्पृश्यों की समस्या के लिए बिल्कुल भी उत्तरदायी नहीं है।

यह मनोवृत्ति कितनी स्वभाव अनुरूप है, इसे यहूदियों के प्रति ईसाइयों की मनोवृत्ति का उदाहरण देकर स्पष्ट किया जा सकता है। हिंदुओं की तरह ईसाई भी यह नहीं मानते कि यहूदियों की समस्या असल में ईसाइयों की समस्या है। इस विषय पर लुइस गोल्डिंग की टिप्पणी इस स्थिति को और अधिक स्पष्ट करती है। यहूदियों की समस्या असलियत में किस तरह ईसाइयों की समस्या है, इसे बताते हुए वह कहते हैं :

''जिस अर्थ में मैं यहूदियों की समस्या को असलियत में ईसाई समस्या समझता हूं, उसको स्पष्ट करने के लिए बहुत ही सीधी–सी मिसाल देता हूं। मेरे ध्यान में मिश्रित जाति का एक आयरिश शिकारी कुत्ता आ रहा है। इसे मैं बहुत दिनों से देखता आया हूं। यह मेरे दोस्त जॉन स्मिथ का कुत्ता है, नाम है पैडी। वह इसे बेहद प्यार करते हैं। पैडी को स्कॉच शिकारी कुत्ते नापसंद हैं। इस जाति का कोई कुत्ता उसके आस–पास बीस गज दूर से भी नहीं निकल सकता और कोई दिख भी जाता है तो वह भूंक–भूंककर आसमान सिर पर उठा लेता है। उसकी यह बात जॉन स्मिथ को बेहद बुरी लगती है और वह उसे चुप करने का हर संभव प्रयत्न भी करते हैं, क्योंकि पैडी जिन कुत्तों से नफरत करता है, वे बेचारे चुपचाप रहते हैं, और कभी भी पहले नहीं भूंकते। मेरा दोस्त, हालांकि पैडी को बहुत प्यार करता है, तो भी वह यह सोचता है, और जैसा कि मैं भी सोचता हूं, कि पैडी की यह आदत बहुत कुछ उसके किसी जाति–विशेष होने पर उसके स्वभाव के कारण है। हमसे किसी ने यह नहीं कहा कि यहां जो समस्या है, वह स्कॉच शिकारी कुत्ते की समस्या है और जब पैडी अपने पास के किसी कुत्ते पर झपटता है जो बेचारा टट्टी–पेशाब वगैरह के लिए जमीन सूंघ–सांघ रहा होता है, तब उसे कुत्ते को क्या इसलिए मारना–पीटना चाहिए कि वह वहां अपने अस्तित्व के कारण पैडी को हमला करने के लिए उकसा देता है।

हम देखते हैं कि यहूदी समस्या और अस्पृश्यों की समस्या एक जैसी है। स्कॉच शिकारी कुत्ते के लिए जैसा पैडी है, यहूदियों के लिए वैसा कोई ईसाई है और वैसा ही अस्पृश्यों के लिए कोई हिंदू है। किंतु एक बात में यहूदियों की समस्या और ईसाई समस्या एक–दूसरे की विरोधी हैं। यहूदी और ईसाई अपनी प्रजाति के एक–दूसरे के शत्रु होने के कारण एक–दूसरे से अलग कर दिए गए हैं। यहूदी प्रजाति ईसाई प्रजाति के विरूद्ध है। हिंदू और अस्पृश्य इस प्रकार की शत्रुता के कारण एक–दूसरे से अलग नहीं हैं। उनकी एक ही प्रजाति है और उनके एक जैसे रीति–रिवाज हैं।

दूसरी बात यह है कि यहूदी, ईसाइयों से अलग–अलग रहना चाहते हैं। इन दो तथ्यों में से पहले तथ्य अर्थात यहूदियों और ईसाइयों में वैर–भाव का आधार यहूदियों की अपनी प्रजाति के प्रति कट्टर भावना है और दूसरा तथ्य ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित लगता है। प्राचीन–काल में ईसाइयों ने यहूदियों को अपने साथ मिलाने के कई प्रयत्न किए, लेकिन यहूदियों ने इसका सदा प्रतिरोध किया। इस संबंध में दो घटनाएं उल्लेखनीय हैं–

पहली घटना नेपोलियन के शासन–काल की है। जब फ्रांस की राष्ट्रीय असेम्बली इस बात के लिए सहमत हो गई कि यहूदियों के लिए 'मानव के अधिकार' घोषित किए जाएं, तब अलसाके के व्यापारी संघ और प्रतिक्रियावादी पुरोहितों ने यहूदी प्रश्न को फिर उठाया। इस पर नेपोलियन ने इस प्रश्न को यहूदियों को उनके द्वारा ही विचार करने के लिए सौंपने का निर्णय किया। उसने फ्रांस, जर्मनी और इटली के प्रमुख यहूदी नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया ताकि इस बात पर विचार किया जा सके कि क्या यहूदी धर्म के सिद्धांत, नागरिकता प्राप्त करने के लिए आवश्यक शर्तों के अनुरूप हैं अथवा नहीं। नेपोलियन यहूदियों को बहुसंख्यकों के साथ मिला देना चाहता था। इस सम्मेलन में एक सौ ग्यारह प्रतिनिधियों ने भाग लिया। यह सम्मेलन 25 जुलाई 1806 को पेरिस के टाउन हाल में हुआ, जिसमें बारह प्रश्न विचारार्थ रखे गए थे। ये प्रश्न मुख्य रूप से यहूदियों में देश–भक्ति की भावना, यहूदियों और गैर–यहूदियों के बीच विवाह होने की संभावना और इसकी कानूनी मान्यता से संबंधित थे। सम्मेलन में जो घोषणा की गई, उससे नेपालियन इतना प्रसन्न हुआ कि उसने येरूस्लम की प्राचीन परिषद के आधार पर यहूदियों की एक सर्वोच्च न्याय परिषद् (सैनहेड्रिन) का आयोजन किया। उसने इसे विधान सभा का कानूनी दर्जा देना चाहा। इसमें फ्रांस, जर्मनी, हालैंड और इटली के इकहत्तर प्रतिनिधि शामिल हुए। इसकी अध्यक्षता स्ट्रासबर्ग के रब्बी सिनजेइम ने की। इसकी बैठक 9 फरवरी 1807 को हुई और इसमें एक घोषणा–पत्र स्वीकार किया गया, जिसमें इस बात के लिए सभी यहूदियों का आवाह्न किया गया कि वे फ्रांस को अपने पूवजों का निवास मान लें, इस देश के सभी निवासियों को अपना भाई समझें और यहां की भाषा बोलें। इसमें यहूदियों और ईसाइयों के बीच विवाह–संबंध उदार भाव से ग्रहण करने का भी अनुरोध किया गया, लेकिन इस घोषणा–पत्र में यह भी कहा गया कि ये विवाह–संबंध यहूदियों की धार्मिक महासभा द्वारा नहीं स्वीकृत किए जा सके। यहां यह उल्लेखनीय है कि यहूदियों ने अपने गैर–यहूदियों के साथ विवाह–संबंध होने की स्वीकृति नहीं दी। उन्होंने इन संबंधों के विरूद्ध कुछ भी कार्रवाई न करने के बारे में सहमति मात्र दी थी।

दूसरी घटना तब की है, जब बटाविया गणराज्य की स्थापना 1795 में हुई थी। इसमें यहूदी संप्रदाय के अति–उत्साही सदस्यों ने इस बात पर दबाव डाला कि उन ढेर सारे प्रतिबंधों को समाप्त किया जाए, जिनसे यहूदी पीड़ित हैं। किंतु प्रगतिशील यहूदियों ने नागरिकता के पूर्ण अधिकार की जो मांग की थी, उसका एम्सटर्डम में रहने वाले यहूदियों के नेताओं ने पहले तो विरोध किया जो काफी आश्चर्य की बात थी। उनको आशंका थी कि नागरिक समानता होने से यहूदी धर्म की सुरक्षा खतरे में पड़ जाएगी, और उन्होंने घोषणा की कि उनके सहधर्मी अपने नागरिक होने के अधिकार का परित्याग करते हैं, क्योंकि इससे उनके धर्म के निर्देशों के अनुपालन में बाधा पहुंचती है। इससे स्पष्ट है कि वहां के यहूदियों ने उस गणराज्य के सामान्य नागरिक के रूप में रहने की अपेक्षा विदेशी के रूप में रहना अधिक पसंद किया था।

ईसाइयों के स्पष्टीकरण का चाहे जो भी अर्थ समझा जाए, इतना तो स्पष्ट है कि उन्हें कम से कम इस बात का तो एहसास रहा है कि उनका यह प्रमाणित करना एक दायित्व है कि यहूदियों के प्रति उनका व्यवहार गैर–मानवीय नहीं रहा है। परंतु हिंदुओं ने अस्पृश्यों के साथ अपने व्यवहार के औचित्य को प्रमाणित करने की बात तो कभी सोची ही नहीं। हिंदुओं का दायित्व तो बहुत बड़ा है, क्योंकि उनके पास कोई वास्तविक कारण है ही नहीं, जिसके अनुसार वे अस्पृश्या को उचित ठहरा सकें। वे यह नहीं कह सकते कि कोई व्यक्ति समाज में इसलिए अस्पृश्य है, क्योंकि वह कोढ़ी है या वह घिनौना लगता है। वे यह भी नहीं कह सकते कि उनके और अस्पृश्यों के बीच में कोई धार्मिक वैर है, जिसकी खाई को पाटा नहीं जा सकता। वे यह तर्क भी नहीं दे सकते कि अस्पृश्य स्वयं हिंदुओं में घुलना–मिलना नहीं चाहते।

लेकिन अस्पृश्यों के संबंध में ऐसी बात नहीं है। वे अर्थ में अनादि हैं और शेष से विभक्त हैं। लेकिन यह पृथकता, उनका पृथग्वास उनकी इच्छा का परिणाम नहीं है। उनको इसलिए दंडित नहीं किया जाता कि वे घुलना–मिलना नहीं चाहते। उन्हें इसलिए दंडित किया जाता है कि वे हिंदुओं में घुल–मिल जाना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि हालांकि यहूदियों और अस्पृश्यों की समस्या एक जैसी है क्योंकि यह समस्या दूसरों की पैदा की हुई है, तो भी वह मूलतः भिन्न है। यहूदी की समस्या स्वेच्छा से अलग रहने की है। अस्पृश्यों की समस्या यह है कि उन्हें अनिवार्य रूप से अलग कर दिया गया है। अस्पृश्यता एक मजबूरी है, पसंद नहीं।

साभार – बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर
सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–9
(पृ.सं. 17 से 20 तक)

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।